॥ श्रीहरिः ॥

177

प्राचीन भक्त

(संक्षिप्त भक्त-चरित-माला १०)
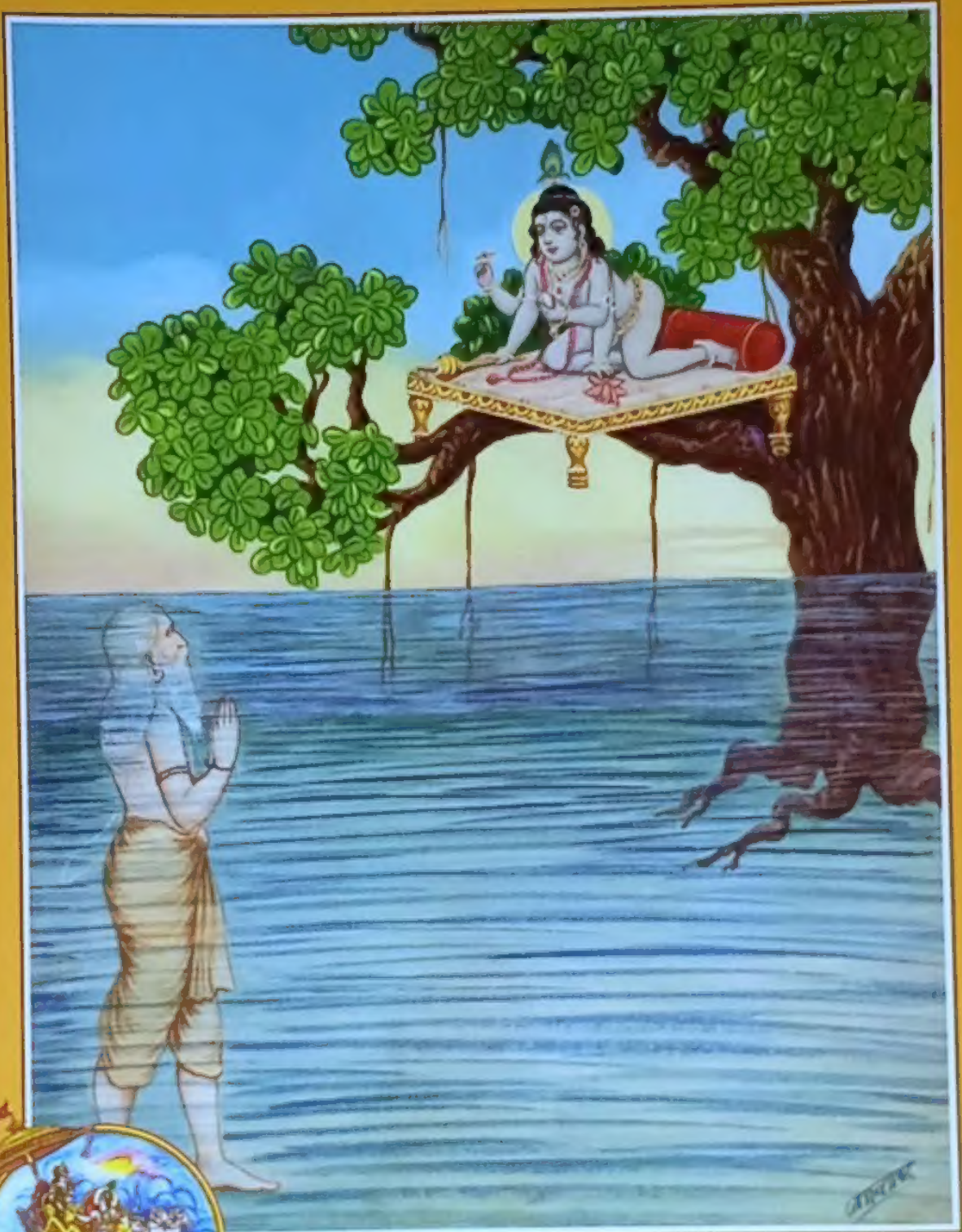
सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

यह भक्त-चरित-मालाका दसवाँ पुष्प है। इसमें पुराणोंसे ली हुई भक्तोंकी पंद्रह कथाएँ हैं। कथाएँ संक्षिप्त होनेपर भी बहुत ही रोचक, उपदेशप्रद और भक्ति बढ़ानेवाली हैं। इसमें पहली और तीसरी कथा ब्रह्मपुराणके, दूसरी और बारहवीं स्कन्दपुराणके, चौथी और आठवीं बृहन्नारदीयपुराणके, पाँचवीं, छठीं, सातवीं, नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और पंद्रहवीं पद्मपुराणके और तेरहवीं तथा चौदहवीं श्रीमद्भागवत और महाभारतके आधारपर लिखी गयी हैं। आशा है, श्रद्धालु पाठक इनसे लाभ उठावेंगे।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरि: ॥

प्राचीन भक्त

भक्त मार्कण्डेय मुनि

महाप्रलयका भयंकर समय था। प्रलय-सूर्यका उदय हुआ, बादल कड़कने लगे, बिजली बरसने लगी, नक्षत्र टूटने लगे। नदी-नद सूख गये। ऊपर-नीचे आग-ही-आग हो गयी। प्रचण्ड पवनकी सहायतासे इस संवर्तक अग्निने सब कुछ भस्म कर डाला। इस महाघोर प्रलयके संकटमें एकमात्र महर्षि मार्कण्डेय ध्याननिष्ठ रहे; परन्तु थोड़ी देरमें प्रलयानलने उन्हें भी व्याकुल कर दिया। वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बेसुध-से हुए रक्षा पानेके लिये दौड़ने लगे। कहीं विश्रामकी जगह उन्हें नहीं दिखायी पड़ी। आगकी आकाशव्यापिनी लपटोंके सिवा कुछ नहीं दीखता था। भक्तने भगवान्‌को याद किया। इतनेमें ही उन्हें एक वटका वृक्ष दिखायी दिया। मार्कण्डेयको उस वटके मूलमें आश्रय मिल गया। देखा, वहाँ न अग्नि थी, न अंगारे बरसते थे और न बिजली ही गिरती थी। मुनि ध्यानमग्न हो गये।

थोड़ी ही देरमें आकाश काले-पीले भयावने बादलोंसे भर गया। प्रलयवर्षा होने लगी। भीषण प्रलयाग्नि बुझ गयी। अब धरती जलमयी हो गयी। सब ओर केवल जल-ही-जल। देव-दानव-मानव किसीका भी अस्तित्व न रहा। मार्कण्डेयने आँखें खोलकर देखा—जल-ही-जल है। न वटका पेड़ है, न चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, पवन या कोई जीव है। घोर एकार्णव है, उसका कोई आश्रय नहीं है। सर्वत्र ही तमोराशि है। मुनि एकार्णव जलमें

डूबने लगे। तैरनेकी चेष्टा की, परन्तु सफलता नहीं मिली। आखिर प्रबल बहावमें बह चले। भगवान्‌का ध्यान किया। मन-ही-मन उनके शरण हुए। भगवान्‌की दिव्य वाणी सुनायी दी। फिर दिखायी पड़ा—वही महान् वटवृक्ष जलराशिपर तैरता हुआ। उसकी एक विशाल डालपर दिव्य पलंग बिछा है। पलंग दिव्य रत्नोंसे विभूषित है। नाना प्रकारके बिछौने बिछे हैं। पलंग क्या है—ऐश्वर्यका भण्डार है, प्रभामण्डलसे मण्डित है। करोड़ों सूर्योंका शीतल सुधावर्षी प्रकाश हो रहा है। पलंगपर बालरूप भगवान् श्रीकृष्ण विराजमान हैं। उनके देहकी प्रभा करोड़ों सूर्योंकी प्रभाको लजानेवाली है; महान् तेज है; एक-एक अंग करोड़ों कामोंका दर्प चूर्ण करता है। भगवान् कमलदललोचन हैं, विशाल वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और दिव्य वनमालाएँ सुशोभित हैं; कानोंमें दिव्य कुण्डल, गलेमें दिव्य हीरक-हार, नानाविधरत्नमय आभूषण हैं, चार भुजाएँ हैं; शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हैं, देवदेव भगवान् श्रीकृष्णके मुनि-मनमोहन इस बालरूपको देखकर मुनिवर मार्कण्डेय मोहित हो गये और विचार करने लगे—इस एकार्णव जलमें जब कि चराचर सब नष्ट हो गया है, यह निर्भय और प्रसन्नवदन तेजोमय अद्‌भुत बालक कौन है? यद्यपि मुनि सब कुछ जानते थे, परन्तु इस समय ईश्वरीय मायासे मोहित होकर वे कुछ भी नहीं समझ सके—

भूतं भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनिः।
न बुबोध तदा दैवं मायया तस्य मोहितः॥

(ब्रह्मपुराण ५३।३६)

मुनिवर पहले कभी न देखे हुए इस विचित्र बालकका तत्त्व न जानकर बहुत दुःखी हुए और अपने तपोबल, ज्ञान, कर्म, दीर्घ

जीवन और मनुष्यत्वको व्यर्थ मानने लगे। तदनन्तर बेसुध-से हो गये और लगे महासमुद्रके जलपर तैरने। रक्षाके लिये व्याकुल मुनि अपनी महिमामें अधिष्ठित और सर्वतेजोमय बालककी ओर देख नहीं सके। मुनिको इस प्रकार विपत्तिमें पड़े देख लीलामय बालकने मुसकराते हुए कहा—'वत्स! तुम अब बहुत थक गये हो और इस विपत्तिसे बचनेके लिये मेरे शरण हुए हो; आओ जल्दी आकर मेरे शरीरमें प्रवेश कर जाओ।' मुनिने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और विवश होकर वे बालकके खुले हुए मुँहमें चले गये।

मुनिने बालकके उदरमें जाकर असंख्य विचित्र विश्व, नाना लोक, अनेकों विचित्र समुद्र, अनेकों द्वीप, विचित्र पृथ्वी, रत्न, पहाड़, वृक्ष, जीव, पशु, पक्षी, देवता, सिद्ध, ऋषि-मुनि, चारण, अप्सरा, स्वर्ग, पाताल, धरा, तीर्थ, क्षेत्र आदि देखे। वहाँ मुनिकी अबाध गति हो गयी, वे सब ओर गये। भगवान्‌की कृपासे उनकी पूर्वस्मृति बनी रही। यों वे अनन्त विश्वोंमें भटके, परन्तु कहीं भगवान्‌के उस शरीरका छोर न मिला। अन्तहीन उस भगवद्देहमें नाना लोकोंमें घूमते और नाना प्रकारके विचित्र जगत्‌को देखते-देखते मुनि घबरा गये और अन्तमें उन्हीं देवदेवके शरण हुए। बालकने मुँह खोला और सहसा मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय बाहर निकल आये।

बाहर निकलकर देखते हैं, वही वटका वृक्ष है। उसी वृक्षशाखापर स्थित पलंगपर वह विचित्र बालक विचित्र ढंगसे बैठा हुआ अपनी मोहिनी विस्तार कर रहा है। मुनिको आश्चर्यचकित देखकर बालकरूप भगवान्‌ने हँसकर कहा— 'वत्स! तुम्हें मेरे पेटमें शान्ति मिली तो तुमने वहाँ क्या आश्चर्य

देखा? हे मुनिवर! तुम मेरे भक्त हो, मैं तुम्हारे कल्याणके लिये कहता हूँ, अब तुम मेरी ओर देखो।' मुनिकी हिम्मत हुई और उन्होंने हर्षपुलकित होकर भगवान्‌की ओर देखा। देखते ही मायाका परदा हट गया। उन्हें नवीन दिव्य दृष्टि मिल गयी। मुनि मार्कण्डेय भगवान्‌के सुर-मुनि-सेवित अरुण चरणकमलोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बार-बार आश्चर्यचकित होते हुए हर्षगद्‌गद कण्ठसे स्तवन करने लगे। मुनिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने कहा—'मुनिवर! तुम क्या चाहते हो? बोलो! तुम्हारी सारी मनोकामना मैं पूर्ण करूँगा!' मुनि भगवान्‌की दिव्य वाणी सुनकर बोले—'भगवन्! मैं तुम्हारा स्वरूप जानना चाहता हूँ। तुम्हारे उदरमें मैं न मालूम कितना फिरा, परन्तु कहीं तुम्हारा ओर-छोर न मिला। हे पुण्डरीकाक्ष! बताओ, तुम कौन हो? क्यों सारे जगत्‌को पीकर यहाँ शिशुरूपमें खेल रहे हो? सारे विश्व क्यों तुम्हारे देहके अन्दर हैं और तुम कबतक यहाँ रहोगे? हे कमललोचन! मैंने जो कुछ देखा, वह बुद्धिके परे और सर्वथा अचिन्तनीय है। बताओ, इस अचिन्त्य लीलाको—उदरको धारण करनेवाले अचिन्त्यके आधार तुम कौन हो?'

भक्त मार्कण्डेयके वचन सुनकर महातेजस्वी महान् वक्ता देवदेव भगवान् मुनिको सान्त्वना देते हुए बोले—

'हे ब्राह्मण! मनुष्य तो क्या; देवता भी मुझको भलीभाँति नहीं जानते; तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं अपना किंचित् रहस्य तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो। हे विप्रर्षे! तुमने पिताकी भक्ति की है, तुम मेरे शरणागत हो और तुमने असाधारणरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन किया है यह मैं जानता हूँ, इसीसे मैं तुमपर सन्तुष्ट हूँ। प्राचीन कालमें मैंने जलका एक नाम 'नार' रखा था, इससे मेरा

नाम 'नारायण' है। ये 'नार' सदा ही मेरे अयन हैं। मैं 'नारायण' नामसे सबका प्रभव हूँ। मैं अविनाशी, नित्य, सर्वभूतोंका विधाता और सृष्टिकर्ता हूँ। मैं ही विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, प्रजापति, धाता, विधाता और यज्ञ हूँ। अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी मेरे चरण हैं, सूर्य-चन्द्र मेरे नेत्र हैं, ऊर्ध्वभूमि मेरा मस्तक है, आकाश और दिशाएँ श्रोत्र हैं, समुद्र पसीना है, दिशा और नभोमण्डल काया है, वायु मन है। यज्ञोंके द्वारा मैं ही पूजित होता हूँ। वेदविद् विप्र मेरी ही अर्चना करते हैं; क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने-अपने कर्मोंके द्वारा मेरा ही पूजन करते हैं। सुमेरु और मन्दराचलसे विभूषित और समुद्रोंसे विस्तृत वसुन्धराको शेषरूपसे मैं ही धारण करता हूँ। प्राचीन कालमें जलमग्ना पृथ्वीका वाराहरूपसे मैंने ही उद्धार किया था। मैं ही बड़वानल बनकर जलराशिका पान करता हूँ, फिर मैं ही उसमें समाविष्ट होकर सबकी सृष्टि करता हूँ। चारों वर्ण मुझसे ही निकले हैं, चारों वेदोंका प्रादुर्भाव मुझसे ही हुआ है और ये सब मुझमें ही प्रविष्ट होते हैं।

'जो समतायुक्त हैं, मन-इन्द्रियोंको जीते हुए हैं, तत्त्व-जिज्ञासु, काम-क्रोध-द्वेषरहित, आसक्तिहीन, निष्पाप, सत्त्वगुणी, निरहंकार और अध्यात्मदर्शी पुरुष हैं, वे ही मेरी तन्मयभावसे उपासना करते हैं। मैं ही संवर्तक नामक ज्योति, अनल, सूर्य और अनिल हूँ। नभोमण्डलमें दीखनेवाले सब तारे मेरे रोमकूप हैं। दिशाएँ और सागर सब मैं ही हूँ। भले-बुरे, सब भाव मुझसे ही हैं। सत्य, दान, तप और सर्वभूतमयी अहिंसासे मनुष्य जिस कल्याणको प्राप्त करते हैं, उसका मूल मैं ही हूँ। सब देहधारी मेरे ही विधानसे विहित और मेरी ही

आज्ञासे संचालित हैं। जो भलीभाँति मेरी पूजा-अर्चा करते हैं, वे शान्तचित्त जितक्रोध पुरुष मुझको ही प्राप्त होते हैं। पापी मनुष्य कदापि मुझे नहीं पाते। लोभी, कृपण, इन्द्रियोंके दास और अशुभ कर्म करनेवाले पुरुष भी मुझे नहीं पा सकते। साधक महात्माओंका प्राप्य जो महाफल है, सो मैं ही हूँ। कुयोगी और विमूढ़ोंके लिये मैं दुष्प्राप्य हूँ। जब धर्मकी ग्लानि और अधर्मका अभ्युदय होता है, तभी मैं प्रकट होता हूँ। जब दैत्य लोग हिंसापरायण हो जाते हैं और देवोंके द्वारा भी नहीं मरते तब मैं मानवरूपमें प्रकट होता हूँ और दैत्योंका संहार कर धर्मकी स्थापना करता हूँ, अपनी मायासे ही मैं सबका संहार और पुनः सृजन करता हूँ। मैं ही काल हूँ, मैं कालचक्रका प्रवर्तक हूँ; मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही सब भूतोंका शमन करनेवाला हूँ। मैं ही सबमें आत्मारूपसे स्थित हूँ। आश्चर्य यह है कि सबमें सदा स्थित होनेपर भी मुझे कोई नहीं जानता। भक्त लोग सब प्रकार मेरी ही पूजा करते हैं। हे विप्रर्षे! तुमने मेरे अन्दर जो क्लेश पाया है, वह तुम्हारे सुख और कल्याणका ही कारण है। स्थावर-जंगम जो कुछ भी तुमने देखा है, भूत-भावन मैं उसमें सर्वत्र ही विराजित हूँ; और सब मेरे ही विधानमें बँधे हैं। मैं ही शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी नारायण हूँ। जबतक हजार युग नहीं बीतेंगे, तबतक मैं विश्वात्मा समस्त विश्वको विमोहित करके सोया रहूँगा। जबतक ब्रह्मा विबुद्ध न होंगे, तबतक मैं अशिशु होकर भी शिशुरूपमें रहूँगा। हे विप्रर्षियोंद्वारा पूजित मुनिवर! मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हूँ, इसीसे तुम्हें यह रहस्य बतलाया है। जबतक ब्रह्मा नहीं प्रकट होते, तबतक तुम यहीं

सुखसे रहो। जब लोक-पितामह प्रकट होंगे तब मैं अकेला ही सब भूतोंकी—आकाश, पृथ्वी, ज्योति, वायु, जल इत्यादि चराचर पदार्थोंकी पुनः सृष्टि करूँगा।'

भगवान्‌की दिव्य वाणी सुनकर महान् तपस्वी भक्त मार्कण्डेय कृतार्थ हो गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त महर्षि अगस्त्य और राजा शंख

हैहयवंशीय प्रजावत्सल राजा श्रुताभिधानके पुत्र महाराज शंख आदर्श नरपति थे। वे शास्त्रोंके सिद्धान्तको जाननेवाले और सारे सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। चित्तको सदा भगवान्में लगाये हुए ही राजकाज करते थे। धीरे-धीरे उनकी विषयासक्ति नष्ट हो गयी। भगवान् कमलनेत्र श्रीजगदीश्वरमें वे निश्चल भक्ति करने लगे। वे नित्य नियमपूर्वक अटल और गहरे निश्चयके साथ अनन्त पुरुषोत्तम भगवान्का ध्यान करते। भगवान्की प्राप्तिके लिये ही वे विविध प्रकारके दान-पुण्य, व्रत एवं दक्षिणायुक्त अश्वमेधादि यज्ञ करते। भगवान्के लिये ही वे ब्राह्मणोंका प्रिय कार्य करते, उनकी पूजा करते तथा जहाँ-तहाँ आवश्यकतानुसार कुएँ, तालाब, धर्मशालादि बनवाते। वे भक्तिपूर्वक अज, अव्यय, अच्युत भगवान् श्रीगोविन्दका नामस्मरण और जप करते, उनकी पूजा करते और पौराणिक विद्वानोंके मुखसे संसार-सागरसे पार उतारनेके लिये नौकास्वरूप पवित्र श्रीहरिकथाका आदरपूर्वक श्रवण करते। यों सतत भगवान्के ध्यानमें लगे हुए उनका पवित्र चिन्तन करते हुए वे तन-मन-धनसे भगवान्की सेवा करने लगे। उनका चित्त सब ओरसे श्रीहरिके प्रति लग गया। उनके मनमें भगवान्के पवित्र दर्शनकी लालसा जाग उठी। वे भगवान्के लिये ही सब काम करते, परन्तु उनकी चिन्ताका एक ही विषय हो गया कि मुझे कब भगवान्के दर्शन होंगे। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-ही-त्यों राजाके मनकी व्याकुलता भी बढ़ने लगी। एक दिन वे बहुत ही खिन्न होकर मन-ही-मन

अपनेको धिक्कार देते हुए कहने लगे—अहो! न मालूम पूर्वजन्मोंमें मैंने कितने पाप किये हैं, जिनके कारण आजतक मैं भगवान्‌के दर्शन नहीं पा सका। अवश्य ही यह मेरी पापराशिका ही फल है। अथवा यह भी हो सकता है कि मेरा मन वस्तुतः भगवान्‌का दर्शन चाहता ही नहीं है, मेरे मनमें यदि भगवान्‌के लिये व्याकुलता वास्तविक होती तो भक्तवत्सल अन्तर्यामी भगवान् क्यों दर्शन देनेमें विलम्ब करते। अब मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे ये विरह-तापसे जलती हुई आँखें भगवान्‌के मुखचन्द्रका दर्शन पाकर शीतल हों। मैं बड़ा ही अपराधी हूँ। मुझे भगवान्‌के श्रीमुखका एक शब्द भी आजतक सुनायी नहीं दिया। भगवान् एक बार मुझे यही कह देते कि मैं तुम्हें लाख वर्ष बाद दर्शन दूँगा तो भी मेरा हृदय नाच उठता। उनकी मधुर वाणी सुनकर मैं उनकी बाट जोहता हुआ जीवन धारण करता। परन्तु हाय! अब किस आशापर जीऊँ, क्या मेरे हृदयेश्वर मुझे इतना आश्वासन भी नहीं देंगे? यों कहते-कहते राजा शंख अत्यन्त व्याकुल हो गये। उनकी आँखोंसे तप्त आँसुओंकी धारा बहने लगी। उनके प्राण कण्ठगत हो गये और वे भगवान्‌के ध्यानमें बेसुध होकर जमीनपर गिर पड़े।

इतनेमें ही उनके कानोंमें मधुर आवाज आयी। मीठे स्वरोंको सुनते ही हृदय शीतल हो गया। आनन्दसे शरीर पुलकित हो उठा। उन्होंने सुना, 'हे प्यारे! तू शोक छोड़ दे, तू मेरा अनन्य भक्त है और सच्चा साधु है, मैं तुझे कभी परित्याग नहीं कर सकता। तूने मेरे लिये बड़ा तप किया है। मैं तुझपर सन्तुष्ट हूँ, परन्तु अभी मेरे दर्शनोंमें एक हजार वर्षकी देर है। तेरी ही तरह

महर्षि अगस्त्य भी मेरे दर्शनार्थ व्याकुल हैं। तू शीघ्र वेंकटेश पर्वतपर चला जा। अगस्त्य भी ब्रह्माके आदेशसे वहीं जाकर तप कर रहा है। वहाँ जाकर मुझमें मन लगाकर मेरा ध्यान-भजन करता रह। तुझे वहीं मेरे दर्शन होंगे।'

'हजार वर्ष बाद भगवान्के दर्शन होंगे' सुनकर राजा हर्षके मारे नाच उठे। कहाँ मैं नीच और कहाँ सर्वलोकमहेश्वर नारायण! हजार वर्षके बाद भी दर्शन तो देंगे। अहा! मेरे समान भाग्यवान् और कौन होगा? मुझे भगवान् हजार वर्षके बाद दर्शन देंगे। इस प्रकार विचार करके राजा आनन्दमग्न हो गये। सच्चे भक्त बड़े ही धैर्यवान् होते हैं, वे कच्चे साधकोंकी भाँति अल्पकालमें ही उकताकर साधना छोड़ नहीं बैठते। फिर भगवान्के मिलनेका तो कोई मूल्य ही नहीं है। भक्त समझता है कि हजार वर्षकी साधनाके बाद भी यदि वे मिल जाते हैं तो बहुत सस्तेमें ही मिलते हैं। वास्तवमें साधनाके बदलेमें या साधनके फलस्वरूप भगवान्के दर्शन नहीं होते। जिसपर कृपा करके वे अपनी योगमायाका पर्दा हटा लेते हैं, उसी भाग्यवान् भागवतको भगवान्के दुर्लभ दर्शन प्राप्त होते हैं। भगवान्के दर्शनके लिये देवता भी तरसते हैं। त्रिदेवगत भगवत्स्वरूपोंके दर्शन तो देवताओंको हो जाते हैं, परन्तु साक्षात् प्रभु अचिन्त्यानन्त सौन्दर्य-माधुर्यके सागर भगवान्के दर्शन तो केवल उनकी कृपासे ही होते हैं, उनके दर्शनका क्या मूल्य है? युग-युगान्तरतक साधना करनेपर भी उनके दर्शनकी योग्यता नहीं प्राप्त होती, अतः हजार वर्षमें दर्शन हो जाना तो उनकी बहुत बड़ी कृपाका प्रभाव है। अपनेको इसी भगवत्कृपाका पात्र समझकर राजाकी प्रसन्नताका

पार न रहा। परन्तु अब हजार वर्षमें एक क्षण भी दूसरे किसी काममें क्यों बीते? अतएव राजाने उसी समय अपने सुयोग्य पुत्र वज्रको प्रजापालनका भार सौंपकर नारायणके दर्शनार्थ नारायणगिरिको गमन किया। वे इतनी जल्दी चले मानो इसी क्षण दर्शन हो रहे हैं और एक क्षणकी देरमें दर्शन नहीं होंगे। यह सोचकर न तो निश्चिन्त हुए न भजनमें ही तनिक कमी आने दी कि 'दर्शन तो हजार वर्ष बाद होंगे और जब भगवान्ने कह दिया है तब दर्शनमें कोई सन्देह भी नहीं है, फिर इतनी जल्दी क्यों की जाय।'

राजा उसी समय चल पड़े और भगवान्का स्मरण करते तथा अपने सौभाग्यपर प्रमुदित होते हुए जहाँतक हो सका शीघ्र-से-शीघ्र नारायणपर्वतपर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा—पर्वतके बहुत ऊँचे शिखरपर स्वामिपुष्करिणी सुशोभित है। उसमें अमृतके समान जल भरा है। अनेक सिद्ध, गन्धर्व और देवता उस स्वामितीर्थका सेवन कर रहे हैं। अनेक प्रकारके पक्षियोंके कलरवसे तथा कुमुद, कमल आदिकी सुगन्धिसे स्थान अत्यन्त मनोहर हो रहा है। राजा शंखने बहुत पवित्र और मनोरम स्थान देखकर उसीके तीरपर अपनी पर्णकुटी बना ली और चित्तकी गतिको अचल करके परमात्मा श्रीनारायणके ध्यानमें लगा दिया। वे अनन्यचित्तसे ध्यानपरायण होकर दारुण तप करने लगे।

उधर ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर महर्षि अगस्त्य भी सैकड़ों मुनियोंसे घिरे हुए उसी पवित्र पर्वतकी प्रदक्षिणा कर रहे थे। देवता और ऋषि-मुनियोंको इस बातका पता लग गया था कि महर्षि अगस्त्यको दर्शन देनेके लिये श्रीभगवान् वेंकटेश

शैलपर प्रकट होंगे, अतएव भगवान्के दिव्य-दर्शनकी लालसासे ब्रह्मा, इन्द्र, स्वामिकार्तिक आदि देवता और सनकादिक योगीन्द्र, नारदादि देवर्षि तथा अन्यान्य सिद्ध महात्मा भी इस सुअवसरपर भगवान्के दर्शनकी लालसा करने लगे। ऋषि अगस्त्यजीको भगवान् श्रीगोविन्दकी पूजा-अर्चा करते-करते वहाँ हजार वर्ष पूरे हो गये, परन्तु उन्हें पुण्डरीकाक्ष भगवान्के दर्शन नहीं हुए, तब महर्षिको बहुत ही चिन्ता हुई। इतनेमें ही वहाँ बृहस्पति, शुक्र आदिने आकर महर्षि अगस्त्यसे कहा—

'हे मुनिवर! आपके समान द्वितीय नारायणसदृश अनन्य नारायणभक्तका दर्शन पानेसे आज हमारा जीवन सफल हो गया। हमलोगोंके जीमें भी भगवान्के दर्शनकी बड़ी लालसा हुई, इसलिये हम सब ब्रह्माजीके पास गये थे। ब्रह्माजीने हमसे कहा है कि 'श्वेतद्वीपके दक्षिण भागमें वेंकटेश नामक एक पवित्र पर्वत है, वहाँ महर्षि अगस्त्य और राजा शंख भगवान्के दर्शनके लिये कठोर साधन कर रहे हैं। सर्वलोकमहेश्वर श्रीगोविन्द स्वयं उन्हें दर्शन देनेके लिये वहाँ प्रकट होंगे, तब हम सब देवगण भी उनके दर्शन कर कृतार्थ होंगे और यह सुअवसर बहुत शीघ्र उपस्थित होगा। अतएव आपलोग वेंकटेश पर्वतपर जाकर महर्षि अगस्त्यसे मिलिये और उनको साथ लेकर शंखके पास जाइये। एवं सब लोग मिलकर भगवान्से शीघ्र प्रकट होनेकी प्रार्थना करते हुए उनकी प्रतीक्षा कीजिये।' हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके आदेशसे हमलोगोंने यहाँ आकर तेजःपुंज आप महाभागके दर्शन किये हैं। अब आपके साथ स्वामिपुष्करिणीके तटपर जाकर महाभाग शंखके दर्शन करेंगे।

भगवान्‌की भक्तिका क्या ही अपूर्व माहात्म्य है! सविधि आराधना करनेपर भी जिन महान् महर्षि और देवताओंका प्रसन्न होना कठिन होता है, वे ही महामहिम महर्षि और देवगण भक्तके दर्शनार्थ उनकी कुटियापर जाते हैं। अस्तु,

महर्षि अगस्त्यको इनकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई, उनका शोक-जाल कट गया। देवगुरु बृहस्पतिजीके नेतृत्वमें देवताओंको साथ लेकर अगस्त्यजी शीघ्र ही स्वामिपुष्करिणीके पास जा पहुँचे। वहाँ जाकर देखते हैं कि नरपति शंख अपने मन, वचन और शरीरकी समस्त चेष्टाओंको श्रीभगवान्‌में अर्पण करके निश्चल समाधिस्थ हो रहे हैं। ऋषि और देवोंके आगमनकी बात जानकर राजाने सबको प्रणाम किया। यथायोग्य स्तुति-प्रार्थना करके सबकी पूजा की। बृहस्पतिजीने सब समाचार सुनाये। तदनन्तर सब लोग भगवान्‌की प्रतीक्षामें उनके श्रीगोविन्द नामका कीर्तन करते हुए अपनेको कृतार्थ मानने लगे।

इस प्रकार तीन दिन स्तुति-प्रार्थना और कीर्तन करते बीत गये। तीसरे दिन रातके समय सबको नींद आ गयी। तब उन्होंने शेष रात्रिमें एक विलक्षण स्वप्न देखा। मानो पुरुषोत्तम हरि भगवान् शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि धारण किये प्रकट होकर बड़ी ही प्रसन्नताके साथ उनके सामने आकाशमें स्थित हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। सब लोग स्वप्नमें भगवान्‌के दर्शन पाकर आनन्दमग्न हो गये। जागनेपर स्वप्नदर्शनको श्रीभगवान्‌के शुभागमनकी पूर्व सूचना समझकर बड़ी ही उत्कण्ठाके साथ भगवान्‌की प्रतीक्षा करने लगे। प्रातःकाल होनेपर उन्होंने आदरपूर्वक यथाविधि पुष्करिणीमें

स्नान किया और नित्यकर्म करके पुनः भगवान् श्रीअच्युतकी आराधनामें लग गये। सब मिलकर नाना प्रकारसे भगवान्‌की स्तुति और '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करने लगे। सबके मनमें यह निश्चय था कि बस, अब भगवान् प्रकट होनेवाले ही हैं, पल-पलमें वे भगवान्‌के प्राकट्यकी बाट देखते थे। उनका चित्त सब ओरसे सर्वथा हटकर केवल श्रीभगवान्‌में ही अनन्यभावसे अर्पित हो रहा था। इतनेहीमें अकस्मात् उनके सामने एक महान् अद्भुत तेज प्रकट हुआ। मानो असंख्य कोटि अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य एक ही साथ प्रकट हो गये हैं और उनकी वह तेजोराशि अपूर्व शोभा धारणकर आकाशमें विराज रही है। अनन्त प्रकाश होनेपर भी उसमें दाह और ताप नहीं है और न आँखें ही उस तेजसे चौंधियाती हैं। सब लोग इस अपरिमित तेजको देखकर दिव्यपरमानन्दविग्रह श्रीनारायणका ध्यान करने लगे। इतनेमें उन्होंने देखा भगवान् उनके सामने उपस्थित हैं। भगवान्‌का स्वरूप वाणी और मनके अतीत है। उनके हजार नेत्र हैं, हजार बाहु हैं, हजार पैर हैं। तपाये हुए सोनेके समान प्रभा है, तेजोमयी कान्ति है, मनोहर होनेपर भी अति भयंकर आकृति है, भयानक दाढ़ें हैं, मुखसे अग्निकी शिखाएँ उगल रहे हैं, वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि और श्रीलक्ष्मीजी शोभा पा रही हैं। अचिन्त्य, अनादि, अनन्त, सर्वात्ममय, समस्त ब्रह्माण्डके प्रकाशक भगवान्‌के ऐसे अत्यन्त भयदायक स्वरूपको देखकर सब लोग डरते हुए भी अत्यन्त हर्षके साथ उनकी स्तुति करने लगे। भगवान् श्रीहरिके जो महान् तेजस्वी आयुध लोकरक्षार्थ त्रिलोकीमें विचरण करते हैं, वे सब भगवान्‌की

सेवामें उपस्थित हो गये। सूर्यसदृश तेजस्वी चक्र, दिव्य गदा, खड्ग, चन्द्रप्रभ पांचजन्य शंख आदि सभीने एकनिष्ठ होकर विराट्रूप श्रीहरिकी पूजा की। पांचजन्यकी उग्र ध्वनिसे राक्षस डर गये। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवगण अत्यन्त आश्चर्यमें डूबकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर वहाँ आ पहुँचे। सनकादि योगी, वसिष्ठादि मुनि, गन्धर्व, सर्प, किन्नर, विष्वक्सेन, गरुड़, जय आदि भगवान्के सेवक और श्वेतद्वीपनिवासी नित्यसिद्ध महात्मा सब वहाँ आ गये। वृक्ष पुष्प-वृष्टि करने लगे, किन्नर और गन्धर्व मुदित मनसे गाने लगे। ब्रह्मादि देवता स्तुति करने लगे। सब ओर आनन्दका प्रवाह बह चला। परंतु भगवान्के भयानक स्वरूपसे मन-ही-मन सब डर भी रहे थे। सबकी इच्छा थी कि सौन्दर्य-माधुर्यनिधि श्रीहरि अपने परम सुन्दर सौम्य स्वरूपमें हमें दर्शन दें। अतएव देवगणकी प्रार्थना सुनकर भगवान् गम्भीर वाणीसे बोले—'हे वत्सगण! देखो, मैं अपनी भयानक मूर्तिको छिपाकर अत्यन्त प्रिय शान्तस्वरूप हो जाता हूँ। अब तुमलोग व्याकुलता छोड़कर सुखपूर्वक दर्शन करो।' इतना कहकर भगवान् क्षणभरके लिये अन्तर्धान हो गये। दूसरे ही क्षण सबने देखा, एक सुन्दर रत्नखचित विमान सामने प्रकट हो गया है, उसपर भगवान् विराजमान हैं। उनका मुखकमल चन्द्रबिम्बकी भाँति शान्त और नील कमलके समान शोभित है। करोड़ों चन्द्रमाओंके समान सुधावर्षिणी शीतलता और करोड़ों सूर्योंके समान भगवान्का प्रकाश है। भगवान् स्वर्णके समान पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं, सुन्दर अंगोंपर अनेक आभूषण और हाथोंमें शंख, चक्र, गदा तथा पद्म सुशोभित हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनि, महर्षि

अगस्त्य और राजा शंख भगवान्‌के इस दिव्य मधुर स्वरूपको देख-देखकर आनन्दमें उन्मत्त-से हो गये और नाना भाँतिसे स्तवन करने लगे। तदनन्तर श्रीभगवान्‌ने महर्षि अगस्त्यसे कहा—'तुमने हमारे लिये बहुत तप किया है, मैं तुमपर अति प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो सो मुझसे माँग लो।' भगवान्‌के वचन सुनकर हर्षगद्‌गद वाणीसे अगस्त्य बोले—'प्रभो! आज मैं क्या नहीं पा गया? मेरे यज्ञ, तप, अध्ययन और श्रवण आदि आज सब सफल हो गये। आज मैं तीनों लोकोंमें धर्मात्मा और धन्य हो गया। मैं आपको खोज रहा था, आज आप स्वयं मुझे दर्शन देने पधारे। आपकी इस कृपादृष्टिकी कल्पनामें ही मेरे समस्त मनोरथ सिद्ध हो गये। हे माधव! मैं विचार करनेपर ऐसी कोई स्थिति या वस्तु नहीं देखता, जो मुझे प्राप्त करनी हो। हे प्रभो! आपकी इस महान् कृपासे बढ़कर और क्या है जो मैं माँगूँ? इसपर भी यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है कि मैं कुछ माँगूँ ही तो नाथ! यही माँगता हूँ कि अपने चरणकमलोंमें आप मेरी निरन्तर अनन्य भक्ति कर दीजिये—

त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिमेवं कुरु निरन्तरम्।

भगवान्‌ने अपनी दुर्लभ भक्ति देकर मुनिको कृतार्थ किया। तदनन्तर देवताओंकी इच्छासे अगस्त्यजीने भगवान्‌से यह वर और माँगा कि आप इस पवित्र वेंकटेश पर्वतपर निवास करें और यहाँ आपके दर्शनार्थ आनेवालोंकी मनःकामना पूर्ण हो। भगवान्‌ने महर्षि अगस्त्यकी इस प्रार्थनाको भी सहर्ष स्वीकार किया। फिर भगवान् राजा शंखसे बोले—'हे वत्स! तुम्हारी भक्तिसे भी मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। मुझे वरद समझकर जो चाहो सो माँगो। तुमने

मेरे लिये बड़े कष्ट सहे हैं। देखता हूँ, तुम्हारा शरीर तपःक्लेशसे अत्यन्त कृश हो गया है।' राजा शंखने बड़े ही विनयके साथ हर्षोत्फुल्ल हृदयसे भगवान्‌से कहा—'नाथ! मुझे आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर और कुछ भी नहीं चाहिये। अपने भक्तोंको आप जो कुछ दिया करते हैं, वही मुझे भी दीजिये। इसके सिवा मैं मुक्ति आदि कुछ भी नहीं चाहता।' भगवान्‌ने कहा—'वत्स! ऐसा ही होगा जो नित्य मेरी सेवामें लगे हैं, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है।'

मत्सेवायोगभव्यानामलभ्यं किं विद्यते।

इतना कहकर भक्तकल्पतरु भगवान् नारायण महर्षि अगस्त्य और राजा शंखको हृदयसे लगाकर देवताओंके द्वारा की जानेवाली स्तुतिको सुनते हुए अन्तर्धान हो गये।

तभीसे वेंकटेश पर्वतकी महिमा बढ़ गयी, जो आज भी उसी प्रकार वर्तमान है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त कण्डु मुनि

प्राचीन कालमें कण्डु नामक एक तपोनिष्ठ मुनि थे। गोमतीके तीरपर एकान्त स्थलमें कण्डु मुनिका नाना प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित, कन्द-मूल-फलपूर्ण परम रमणीय आश्रम था। मुनि उस आश्रममें निवास करते हुए व्रत, उपवास, नियम, स्नान, मौन और संयमादिसहित परम अद्भुत महान् तपस्या करने लगे। वे गरमीके दिनोंमें पंचाग्नि तापते, वर्षा ऋतुमें खुली जगहमें भूमिपर शयन करते और जाड़ेके मौसममें भीगा वस्त्र पहनते। उनका इस प्रकारका उग्र तप देखकर देवता, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधरादि सभी आश्चर्यमें डूब गये। देवराज इन्द्रको मुनिकी तपस्या देखकर बड़ा भय हुआ। सकामभावसे की हुई महान् तपस्याका फल स्वर्ग या स्वर्गराज्यके आधिपत्य—इन्द्रपदकी प्राप्ति है। इसीलिये इन्द्र ऐसे सकाम तपस्वियोंसे डरा करते हैं। इन्द्रने देवताओंके साथ सलाह करके प्रम्लोचा नामकी अति सुन्दरी, चिरयौवना अप्सराको कामदेवादिके साथ मुनिकी तपस्या भंग करनेके लिये भेजा। प्रम्लोचा उग्रतपा मुनिके शापभयसे एक बार तो जानेको तैयार नहीं हुई, परंतु अन्तमें देवराज इन्द्रके आग्रहसे उसे जाना पड़ा। दल-बलसहित प्रम्लोचाने मुनिके आश्रममें पहुँचकर मधुर स्वरसे गायन आरम्भ किया। वसन्तने अपनी शक्तिका विस्तार किया। पुष्पधन्वा मदनने मुनिके मनमें क्षोभ पैदा कर दिया। भगवान्के आश्रयसे रहित अपने तपोबलपर अभिमान करनेवाले उग्रतपा मुनि मदनमोहित होकर प्रम्लोचाके वशमें हो गये। इन्द्रका उद्देश्य सिद्ध हुआ, मुनिका तप भंग हो गया। एकान्तमें स्त्रीके दर्शनमात्रसे ही बड़े-बड़े तपस्वी

मुनियोंके मन डिग जाते हैं। इसीलिये साधकको सावधान करते हुए शास्त्रोंने 'स्त्री और स्त्रीसंगियोंके संग' का भी त्याग करनेकी आज्ञा दी है। पाश्चात्य सभ्यताके उपासक जो भोले भाई आजकल स्त्री-पुरुषोंके अमर्यादितरूपसे साथ रहने, साथ पढ़ने और एकान्तमें मिलने-जुलने आदिमें कोई आपत्ति नहीं समझते, वे इस महान् कुपरिणामको भूल रहे हैं। प्रथम तो स्त्री-पुरुषका एकान्तमें मिलन ही बहुत बुरा है; दूसरे जो अभिमानी मनुष्य सद्‌बुद्धिप्रेरक सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के बलपर भरोसा नहीं करता, ईश्वरके आश्रयमें विश्वास नहीं करता, उसका तो स्त्रीके साथ एकान्तमें मिलकर बचना उतना ही कठिन है जितना जलती हुई अग्निमें गिरकर सूखे काठका बचना। कण्डु मुनिका भी यही हाल हुआ। उन्होंने कामपरवश हो वारांगना प्रम्लोचाको अपने आश्रममें रख लिया और तपोबलसे चिरकालके लिये सुन्दर षोडशवर्षीय युवक बनकर उसके साथ रहने लगे। प्रम्लोचा उनका तपोबल देखकर दंग रह गयी।

तपस्वी मुनि मोहवश स्नान, सन्ध्या, होम, स्वाध्याय, देवतार्चन, व्रत, उपवास, नियम, ध्यान आदि सब कुछ भूलकर रात-दिन उसी अप्सरामें आसक्त रहने लगे। उन्हें अपने तपनाशकी बात भी याद नहीं रही। मोह यहाँतक बढ़ा कि उन विषयासक्त मुनिको सुबह-शाम, दिन-रात, पक्ष-मास, ऋतु-वर्ष आदि गतकालका भी कुछ पता नहीं रहा।

स्नानं सन्ध्यां जपं होमं स्वाध्यायं देवतार्चनम्।
व्रतोपवासनियमं ध्यानं च मुनिसत्तमः॥
त्यक्त्वा स रेमे मुदितस्तया सार्द्धमहर्निशम्।
मन्मथाविष्टहृदयो न बुबोध तपःक्षयम्॥

सन्ध्यारात्रिदिवापक्षमासर्त्वयनहायनम् ।
न बुबोध गतं कालं विषयासक्तमानसः ॥

इस प्रकार कण्डु मुनिको विषय-सेवनमें सौ वर्षसे अधिक बीत गये। तब एक दिन प्रम्लोचाने कहा—'भगवन्! मैं अब स्वर्ग जाना चाहती हूँ, कृपा करके आज्ञा दें।' आसक्तचित्त मुनिने कहा—'कल्याणि! कुछ समय और ठहर जाओ।' पुनः सौ वर्ष बीतनेपर प्रम्लोचाने फिर जानेकी आज्ञा माँगी, तब मुनिने पुनः वैसे ही कुछ समय और ठहरनेको कहा। यों शताब्दियोंपर शताब्दियाँ बीतने लगीं। प्रम्लोचाकी स्वर्ग जानेकी इच्छा बार-बार होती, परंतु वह तपस्वी मुनिके शापके भयसे बिना आज्ञा जा नहीं सकती। वह जब-जब मुनिसे हाथ जोड़कर आज्ञा माँगती, तभी मुनि उसे कुछ समयतक और ठहरनेके लिये कह देते। एक दिन सन्ध्याके समय पूर्वसुकृतके प्रतापसे मुनिको कुछ चेत हुआ, वे जल्दीसे उठकर कुटियासे बाहर जाने लगे। यह देखकर प्रम्लोचाने कहा—'भगवन्! कहाँ पधार रहे हैं?' मुनि बोले—सूर्यास्त हो रहा है, सन्ध्योपासना करूँगा, नहीं तो कर्म लोप हो जायगा।' मुनिकी यह बात सुनकर प्रम्लोचाको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह विनयपूर्वक बोली—'हे सर्वधर्मज्ञ! आज नया सूर्यास्त थोड़े ही हो रहा है, कितना समय बीत गया। सूर्यास्त तो रोज ही होता था, आपने तो कभी सन्ध्या नहीं की। क्या आपको यह बात स्मरण नहीं रही'? मुनिने चकित-से होकर कहा—'हे कल्याणि! तुम यह क्या कह रही हो? मैंने आज ही प्रातःकाल तो तुमको नदीतीरपर देखा था; इसके बाद तुम दिनभर आश्रममें रही। अब सन्ध्याकाल उपस्थित है। सूर्य अस्त हो रहे हैं, मैं सन्ध्या करने जा रहा हूँ; इसपर तुम मेरा उपहास

कैसे कर रही हो?' प्रम्लोचाने कहा—'भगवन्! आपका कहना सत्य है, मैं आयी तो प्रातःकालके समय ही थी, परंतु उस प्रातःकालको आज पूरे नौ सौ सात वर्ष, छः महीने और तीन दिन बीत चुके हैं।' मुनि बोले—'हे शुभे! क्या सचमुच इतना समय बीत चुका? तुम मेरा मजाक तो नहीं उड़ा रही हो? मुझे तो अबतक यही प्रतीत हो रहा है कि तुम सिर्फ आज ही सुबहसे मेरे पास हो।' प्रम्लोचा बोली—'भगवन्! आपके सामने झूठ बोलनेकी हिम्मत किसकी होगी? खास करके आज तो आप सत्पथपर आरूढ़ हो रहे हैं, इसलिये मैं क्यों मिथ्या कहूँगी?' प्रम्लोचाकी बात सुनकर मुनि अपनी स्थितिपर विचार करते ही व्याकुल हो गये और भाँति-भाँतिसे अपने आचरणोंकी और इन्द्रियोंके दासत्वकी निन्दा करने और अपनेको धिक्कारने लगे। अप्सरा प्रम्लोचा इस समय शापके भयसे काँप रही थी, उसकी ओर देखकर मुनिने कहा—'पापिनि! तुमने बहुत बुरा किया, अपनी दृष्टिरूपी महामोहन मन्त्रसे मेरी तपस्याका नाश करके तुमने मुझे निन्दाका पात्र बना दिया; परंतु क्या करूँ, बातचीतमें सात शब्द उच्चारण होनेपर ही साधुओंकी मित्रता हो जाती है, तुम तो इतने समयतक मेरे साथ रही हो। इसीलिये अपनी क्रोधाग्निमें मैं तुम्हें भस्म नहीं करता। फिर तुम्हारा दोष ही क्या है? तुम्हारे प्रति क्रोध करनेका कोई कारण भी नहीं दिखायी देता, क्योंकि दोष तो सब मेरा ही है; मैं अजितेन्द्रिय और विषयलोलुप हूँ, नहीं तो तुम मुझे कैसे अपने जालमें फाँस सकती? जाओ, अब जल्दी मेरी नजरसे ओझल हो जाओ।'

प्रम्लोचा प्राण बचाकर भागी। उस समय वह गर्भवती थी, उसके मारिषा नाम्नी कन्या हुई। प्रसिद्ध दक्ष प्रजापति इसी

मारिषाके पुत्र थे। सच कहा जाय तो संसारमें हम सभी विषयासक्त मनुष्य धर्म-कर्म सब कुछ छोड़कर अतीतकालको भूलकर दिन-रात विषय-सेवनमें लगे हुए हैं। कभी विषय-सेवनसे मन हटाकर परलोक या परमेश्वरकी बात सोचनेकी हमें फुरसत ही नहीं मिलती। भगवत्कृपासे जिसको चेत होता है, उसकी तो यही मुनि कण्डुकी-सी दशा होती है और जिसको विषय-सेवनसे पश्चात्ताप होता है, वही भगवान्‌के मार्गपर आरूढ़ होता है। अस्तु,

तपोभ्रष्ट मुनि कण्डु पश्चात्तापकी आगमें जलने लगे। और कोई उपाय न देखकर भक्तवत्सल करुणामय भगवान्‌के भजनकी ओर उनकी वृत्ति गयी। वे पुरी नगरीमें आकर पुरुषोत्तम श्रीहरिकी शरण ग्रहण कर नियम-व्रतोंका पालन करते हुए परम श्रद्धाके साथ मन लगाकर श्रीभगवान्‌के 'ब्रह्मपार' स्तोत्रका जप करने लगे। ब्रह्मपारस्तोत्र यह है—

पारं परं विष्णुरपारपारः परः परेभ्यः परमात्मरूपः।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि वारपारः॥
स कारणं कारणसंश्रितोऽपि तस्यापि हेतुः परहेतुहेतुः।
कार्योऽपि चैवं सह कर्मकर्तृरूपैरनेकैरवतीह सर्वम्॥
ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माव्ययं नित्यमजं स विष्णुरपक्षयाद्यैरखिलैरसंगः॥
ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथासौ पुरुषोत्तमः।
तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम॥

(ब्रह्मपुराण, अ० १७८, श्लोक ११४—११७)

भगवान्‌के अनन्य शरणापन्न मुनिवर कण्डु भगवान्‌के दर्शनके लिये उत्सुक होकर निरन्तर उपर्युक्त ब्रह्मपारस्तोत्रका जप करने

लगे। मुनिकी स्तुति सुनकर और उनकी सुदृढ़ परम भक्ति देखकर भक्तवत्सल गरुडवाहन भगवान् एक दिन ध्यानमग्न मुनिके सामने पधारे और मेघगम्भीर स्वरसे बोले—'हे सुव्रत मुनि! तुम क्या चाहते हो? कहो, मैं अभीष्टवरदाता तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। ध्यानमग्न मुनिने भगवान्‌की दिव्य वाणी सुनकर आँखें खोलीं और सामने खड़े हुए श्रीहरिके दर्शन किये।

अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्।
शंखचक्रगदापाणिं मुकुटांगदधारिणम्॥
चतुर्बाहुमुदारांगं पीतवस्त्रधरं शुभम्।
श्रीवत्सलक्ष्मसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वरत्नविभूषितम्।
दिव्यचन्दनलिप्तांगं दिव्यमाल्यसमन्वितम्॥
ततः स विस्मयाविष्टो रोमांचिततनूरुहः।
दण्डवत् प्रणिपत्योर्व्यां प्रणाममकरोत्तदा॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलस्तं स्तोतुमुपचक्रमे॥

(ब्रह्मपुराण, १९८। १२३—१२७)

भगवान् श्रीहरिको अलसीके पुष्पों-जैसे नीलवर्ण कमलसदृश विशाल नेत्रवाले, हाथोंमें शंख-चक्र-गदा लिये, मुकुटांगद धारण किये, चतुर्भुज, अति सुन्दर कलेवरवाले, पीताम्बर पहने, शुभदर्शन, श्रीवत्सचिह्नको हृदयपर धारण किये, वनमाला और समस्त रत्नोंसे विभूषित, दिव्य चन्दन लगाये हुए और दिव्य माला धारण किये देखकर मुनि मुग्ध हो गये और पुलकित होकर दण्डकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े। पश्चात् श्रीचरणोंमें प्रणाम करके बोले—'अहा! आज मेरा जन्म सार्थक हो गया, आज मेरी

सम्पूर्ण तपस्या सफल हो गयी' यों कहकर उन्होंने दिव्य वाणीसे भगवान्‌के गुण, प्रभाव और रहस्यसे पूर्ण सर्वशास्त्रमयी स्तुति की।

मुनिके सरलहृदयके सत्य स्तवनको सुनकर प्रेमविह्वल हो भगवान्‌ने कहा—'हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारी जो कुछ भी इच्छा हो, मुझसे शीघ्र माँग लो।' भगवान्‌के प्रेमपूर्ण दिव्य वचन सुनकर मुनिने कहा—'हे जगन्नाथ! हे स्वामिन्! यह संसार बड़ा ही दुस्तर, कँपा देनेवाला, अनित्य, दुःखमय, केलेके पेड़के समान सारहीन, मायासे बना हुआ, जलके बुद्‌बुदेके समान चंचल, महान् उपद्रवोंसे पूर्ण, दुःखोंसे भरा हुआ और अति भयानक है। तुम्हारी मायासे मोहित हुआ मैं अनादि कालसे इसमें चक्कर लगा रहा हूँ। मैं इतने लम्बे समयतक विषयोंमें डूबा रहा, फिर भी इसका अन्त नहीं आया। अतएव मैं संसार-भयसे पीड़ित होकर आपके शरणापन्न हुआ हूँ। हे देवेश! हे कृष्ण (अपनी ओर खींचनेवाले)! मुझपर कृपा करो। और मुझे अपने उस सनातन परमपदपर पहुँचा दो, जहाँ जाकर फिर कोई वापस नहीं लौटेगा।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—'हे भक्त मुनि! तुझे अवश्य ही मोक्षकी प्राप्ति होगी। क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र और अन्त्यजादिमें जो कोई भी मेरी भक्ति करता है, उसीको मेरी प्राप्तिरूप परम सिद्धि मिल जाती है; फिर हे द्विजोत्तम! तुम्हारी तो बात ही क्या है। चाण्डाल भी यदि सम्यक् श्रद्धाके साथ मेरी भक्ति करता है, तो उसे भी मनोवांछित सिद्धि प्राप्त हो जाती है; फिर दूसरोंके लिये तो कहना ही क्या है।

मद्भक्ता क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथान्त्यजाः।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं किं पुनस्त्वं द्विजोत्तम॥

श्वपाकोऽपि च मद्भक्तः सम्यक्छ्रद्धासमन्वितः।
प्राप्नोत्यभिमतां सिद्धिमन्येषां तत्र का कथा॥

इतना कहकर दुर्विज्ञेयगति भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर मुनि सर्वकामनाओंका त्याग कर, ममता और अहंकारको छोड़कर, समस्त इन्द्रियोंका भलीभाँति संयम कर एकाग्र मनसे सम्यक्-रूपसे विज्ञानानन्दघन चेतन भगवान्के ध्यानमें निमग्न हो गये और अन्तमें देवदुर्लभ परम मोक्षपदको प्राप्त हुए।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त मुनि उत्तंक
व्याधका उद्धार

सौवीर नगरीमें विष्णुभगवान्‌का एक दर्शनीय मन्दिर था। मन्दिर एक बड़े सुन्दर बगीचेमें था। उसमें परम शान्त, निःस्पृह, दयालु महात्मा उत्तंक रहते थे। विप्रवर उत्तंकजी भगवान्‌की सेवाके परायण, परम प्रेमी तथा ज्ञानी और तपकी मूर्ति थे। वे अपनी चित्तवृत्तियोंको सब ओरसे हटाकर निरन्तर भगवान्‌के ध्यानमें मग्न रहते थे। उनका काम था—आठों पहर प्रेमविह्वल चित्तसे भगवान्‌का चिन्तन करना और भगवान्‌के लिये ही जीवनकी प्रत्येक क्रियाका सम्पादन करना। वे मन्दिरमें भगवान्‌की सेवा करते थे।

एक दिन कणिक नामका एक व्याध डाकू मन्दिरके पाससे निकला। कणिक बड़े ही कठोर हृदयका मनुष्य था। परनिन्दा, परधनहरण और परपीडन ही उसका काम था। देवता, ब्राह्मण, गुरु किसीको भी वह कुछ नहीं मानता था। मन्दिरके शिखरपर विशाल स्वर्णकलशको देखकर उसका मन ललचा गया। उसने सोचा—मन्दिरमें अटूट धन है, जवाहरात और सोना भरा है, इसे लूटना चाहिये। यह विचारकर वह रातके समय मन्दिरमें घुस गया। महात्मा उत्तंक एकान्तमें बैठे श्रीभगवान्‌का ध्यान कर रहे थे। डाकू कणिकने अपने कार्यमें विघ्न समझकर उन्हें मारनेका विचार किया और तलवार खींचकर उनके सामने खड़ा होकर चिल्लाने लगा। ध्यानमग्न महात्माका इससे ध्यान भंग नहीं हुआ, तब उसने धक्का देकर उन्हें गिरा दिया और उनकी छातीपर पैर

रखकर तथा उनके केश पकड़कर सिर काटनेको तैयार हो गया। उत्तंकजीने आँखें खोलीं। उनकी आँखोंसे मानो शान्ति और प्रेमकी धारा बह रही थी। उन्होंने उन अनोखी आँखोंसे कणिककी ओर देखा। जादू हो गया। महात्माकी दृष्टि पड़ते ही कणिकके हाथसे तलवार गिर पड़ी और वह अलग खड़ा होकर मन्त्रमुग्धकी तरह महात्मा उत्तंककी ओर देखने लगा। उत्तंकजी नम्र तथा शीतल शब्दोंमें चेतावनी देते हुए बोले—

'भाई! तुम मुझ निरपराधका वध करनेको क्यों तैयार हो गये? हे साधो! बताओ, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? संसारमें जो अपराध करता है, उसीको दण्ड दिया जाता है। हे सौम्य! मैंने तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया। सज्जन लोग तो पापीका भी विनाश नहीं करते। वे उसके पापका ही विनाश करते हैं। विरोधी मूर्खमें भी गुण देखकर शान्तचित्त साधुजन उसकी भलाई करते हैं। जो पुरुष भाँति-भाँतिसे सताये जानेपर भी सतानेवालेको क्षमा करता है, उसका कल्याण ही करना चाहता है, उसीको तुम उत्तम पुरुष तथा भगवान् विष्णुका प्रिय पात्र समझो। दूसरेका हित चाहनेवाले सन्तजन किसीके द्वारा मारे जाते हुए भी उसके साथ वैरका आचरण नहीं करते। चन्दनका पेड़ काटते समय भी काटनेवाले कुठारके मुँहमें सुगन्ध भर देता है। विधाताका कैसा विधान है कि सब प्रकारके संगोंका त्याग कर चुके हुए पुरुषोंको भी बुरे लोगोंसे कष्ट सहना पड़ता है। संसारमें दुर्जन लोग बिना ही कारण लोगोंको सताया करते हैं। उनमें सीधे-सादे साधुजन ही अधिक सताये जाते हैं। बलवान् व्यक्तिको कोई नहीं सताता। घास और पानीपर संतोष करनेवाले हरिन और मछलियोंको ही व्याध और धीवरलोग मारा करते हैं।

मायाकी कैसी महिमा है? मनुष्य स्त्री, पुत्र, परिवारके मोहसे जान-बूझकर दुःखोंको अपने ऊपर ले लेता है। क्या यह सत्य नहीं है कि जो दूसरेका धन लूटकर अपने परिवारका पालन करता है, उसे एक दिन सबको छोड़कर अकेले जाना पड़ेगा? मेरी माँ, मेरे पिता, मेरी स्त्री, मेरा स्वामी, मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा शरीर—इस प्रकारकी यह ममता ही जीवोंको सदा-सर्वदा क्लेश दिया करती है। मरनेपर मनुष्यके साथ ये पाप और पुण्य ही जाते हैं। जो मनुष्य पापसे धन पैदा करके परिवारको पालता है, पापके फलका भोग करते समय परिवारके लोग उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते। जो कुछ होना है वही होगा, यह निश्चय होते हुए भी विषयासक्त मनुष्य 'मैं धन कमाकर सुखी हो जाऊँगा।' इस मिथ्या आशासे नाना प्रकारके पाप करता है और मनुष्यका जीवन—जो परम दुर्लभ है और केवल भगवत्प्राप्तिके लिये ही जीवोंको मिलता है, उसे पाप बटोरनेमें ही खो देता है। भाई! तुम जरा विचार तो करो, तुम जो कुछ कर रहे हो क्या यही तुम्हारा कर्तव्य है? इस पापका कितना भयानक फल होगा? क्या कभी तुमने इस बातपर खयाल भी किया है? प्यारे! मोहको छोड़कर मनुष्य-जीवनको सफल बनानेकी चेष्टा करो। पापोंको त्यागकर भगवान्के भजनमें मन लगाओ। देखो, भगवान्की कृपासे तुम्हारा कल्याण होते देर न लगेगी।'

सत्संगकी और साधुसमागमकी विचित्र महिमा है। महात्मा उत्तंकके उपदेशने व्याधकी नरककी ओर लगी हुई चित्तवृत्तिको लौटाकर कल्याणस्वरूप भगवान्की ओर लगा दिया। वह बार-बार क्षमा चाहता हुआ उत्तंकजीके चरणोंपर गिर पड़ा और—

तत्संसर्गप्रभावेण हरिसन्निधिमात्रतः।
गतपापो लुब्धकश्च अनुतापीदमब्रवीत्॥

(बृहन्नारदीय पु० ३५। ५२)

महात्माके संगके प्रभावसे और मन्दिरमें तथा महात्माके हृदय और वचनोंमें स्थित भगवान् हरिकी सन्निधिमात्रसे निष्पाप होकर अपने पूर्वकृत पापोंके लिये अनुताप करता हुआ वह व्याध बोला—

'हे प्रभो! आपके शुभ दर्शनसे मेरे सारे महापाप नष्ट हो गये, परंतु मैं बड़ा ही पातकी हूँ। जीवनभर मैंने महापाप किये हैं, उनके भयानक परिणामसे मेरा छुटकारा कैसे होगा? हे प्रभो! मैं किसकी शरण ग्रहण करूँ? पूर्वजन्मके अनेक पापोंसे मुझे व्याधका शरीर मिला और इस शरीरसे भी मैंने सारी उम्र पाप-ही-पाप बटोरे हैं। मेरी क्या गति होगी? हाय! हाय! पृथ्वीके भारस्वरूप और निरपराधोंको पीड़ा देनेवाले मुझ अधमको विधाताने रचा ही क्यों? हे हरि! हे दयामय भगवन्! हे अशरण-शरण! हे पाप-तापोंके विनाश करनेवाले! नाम-स्मरणमात्रसे ही पश्चात्तापपरायण पापी जीवको अपनी सुखमयी शरणमें ले लेनेवाले दयामय! मुझे अपनी शरणमें ले लो। हाय! मैं तुम्हारा ही हूँ, तुमको छोड़कर मुझे सहारा देनेवाला और कौन है?'

इस प्रकार आत्मनिन्दा और अनुताप करता हुआ तथा भगवान् हरिकी शरण चाहता हुआ व्याध गिर पड़ा और तत्काल ही उसकी मृत्यु हो गयी। महामति दयालु उत्तंकने व्याधको पड़ा हुआ देखकर भगवान्का चरणोदक उसके ऊपर छिड़क दिया। अन्तकालमें पापोंका पश्चात्ताप, भगवान् हरिका स्मरण और भगवान्के चरणामृतका शरीरसे स्पर्श हो जानेके कारण व्याध

पापमुक्त होकर भगवान्‌के परमधामका अधिकारी हो गया। दिव्य पार्षद दिव्य विमानको लेकर उपस्थित हो गये और दिव्य देह धारण कर डाकू कणिक विमानपर चढ़कर जाने लगा। चलते हुए उसने मुनि उत्तंकसे नम्रतापूर्वक कहा—'हे मुनिश्रेष्ठ उत्तंक! आप मेरे गुरु हैं, आपहीके प्रसादसे मैं महापापसे छुटकारा पा सका हूँ। हे भगवन्! आपके उपदेशको सुनकर मेरे मनमें अनुताप उत्पन्न हुआ और भगवान्‌की स्मृति हुई; उसीसे मेरे सब पाप नष्ट हो गये और आपने कृपापूर्वक मेरे अंगोंपर जो हरिचरणामृत छिड़क दिया, उसीके फलस्वरूप आज मैं भगवान्‌के परमधामको जा रहा हूँ। हे सुव्रत! आपके समान गुरुको पाकर मैं कृतार्थ हो गया। आपको बारम्बार नमस्कार है। मेरे सारे अपराधोंको आप क्षमा करें।' यों कहकर और मुनिके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करके और उनकी तीन बार प्रदक्षिणा करके वह भगवान् विष्णुके परमधामको चला गया।

व्याधकी इस प्रकार सद्‌गति देखकर तपोनिधि उत्तंक चकित हो गये और हाथ जोड़कर भगवान् हरिकी स्तुति करने लगे—

'हे नारायण! हे आदिदेव! तुम ही जगत्‌के आश्रय और प्रलयके कारण हो। हे शार्ङ्गधनुष, सुदर्शनचक्र, असि और पद्मको धारण करनेवाले महात्मन्! जो तुम्हारा स्मरण करता है, तुम उसकी सारी यन्त्रणा दूर कर देते हो। तुमको नमस्कार है। तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा समस्त लोकोंकी उत्पत्ति करते हैं, तुम्हारे तेजसे उत्पन्न होकर रुद्र समस्त विश्वका संहार करते हैं। तुम आदिनाथको बार-बार प्रणाम है। हे पद्मपलाशलोचन! हे विचित्रवीर्य! हे अखिलविश्वके एकमात्र कारण! तुम्हीं वेदान्तवेद्य परम पुरुष हो। तुम्हीं तेजोधाम विष्णु

हो, तुम्हीं सर्वगत आत्मा, अच्युत, ज्ञानस्वरूप और ज्ञानिश्रेष्ठ हो, तुम्हीं करुणानिधि परमात्मा हो, तुम्हीं शरणागतोंका दुःख हरनेवाले हो, इस अधमका कल्याण करो। तुम्हारे चरणोंमें मेरा बार-बार प्रणाम है।

इस प्रकार नाना प्रकारके वेदविहित तत्त्वपूर्ण वाक्योंसे भगवान्‌की लम्बी स्तुति करके अन्तमें मुनिने कहा—

संसारसिन्धौ पतितं जडं मां मोहाकुलं कामशतेन बद्धम्।
विज्ञानभेदभ्रमितात्मबुद्धिं त्रायस्व विष्णो सततं नमस्ते॥
लज्जाविहीनं च दयाविहीनं तुच्छं परद्रव्यपरायणं माम्।
ममत्वपाशान्तरवस्थितं च त्रायस्व विष्णो सततं नमस्ते॥
अकीर्तिभाजं पिशुनं कृतघ्नं सदाशुचिं पापरतं प्रमन्युम्।
दयाम्बुधे त्राहि भयाकुलं मां पुनः पुनस्त्वां शरणं प्रपद्ये॥

(बृहन्नारदीय पु० ३८। ३६—३८)

'हे भगवन्! संसारसमुद्रमें पड़े हुए, मोहसे व्याकुल, सैकड़ों कामनाओंसे बँधे हुए नाना प्रकारके ज्ञानसे भ्रान्तबुद्धि हुए मुझ मूर्खका परित्राण कीजिये; आपको सदा नमस्कार है। हे विष्णो! लज्जाहीन, निर्दय, पराये धनके परायण हुए, ममताकी फाँसीमें बँधे हुए मुझ नीचको आप बचाइये, आपको बार-बार नमस्कार है। हे भगवन्! अकीर्तिभाजन, चुगलखोर, कृतघ्न, सदा अपवित्र, पापमें रत और भयसे पीड़ित मुझ दीनको हे दयासागर! आप बचाइये, मैं बार-बार आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

तत्त्व और विनयसे पूर्ण स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरि भक्तराज उत्तंकके सामने सहसा प्रकट हो गये। द्विजवर उत्तंकने देखा, परम दिव्य प्रकाशके अन्दर भगवान् प्रकट हैं। भगवान्‌का अतसीपुष्पके समान नील वर्ण है। प्रफुल्ल कमलके समान

भगवान्‌के नेत्र हैं, भगवान्‌के मस्तकपर मनोहर किरीट, कानोंमें मकराकृत कुण्डल और गलेमें रत्नहार शोभित हो रहा है। भगवान्‌के वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और कौस्तुभमणि सुशोभित है। भगवान् स्वर्णयज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं। नासिकाके अग्रभागमें लटकते हुए दिव्य मोतीकी आभासे भगवान्‌की देहप्रभा और भी चमक उठी है। भगवान् वनमालासे विभूषित हैं, पीताम्बर धारण किये हुए हैं। किंकिणी और नूपुर आदिसे सुशोभित हैं, भगवान्‌के मनोहर और महान् प्रकाशमय चरण तुलसीदलसे चर्चित हैं। भगवान् मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। भगवान्‌के दिव्य नेत्रोंसे आनन्द और स्नेहकी शान्ति सुधामयी धारा बह रही है। इस प्रकार गरुड़ध्वज भगवान्‌का साक्षात् दर्शन करके मुनि उत्तंक उनके चरणोंमें गिर पड़े और आनन्दाश्रुओंकी पवित्र धारासे उन्होंने भगवान्‌के दोनों चरणोंको पखार दिया। आनन्दकी बाढ़से मुनिकी जबान बन्द हो गयी, कुछ समयके बाद 'मुरारे! रक्षा करो, रक्षा करो' इतना ही वे कह सके।

कृपासिन्धु भगवान्‌ने उठाकर उत्तंकको हृदयसे लगा लिया और बोले—'हे वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं रहा। अब मनमाना वरदान माँग लो।' मुनिने देवदेव श्रीहरिके दिव्य वाक्योंको सुनकर प्रणाम करते हुए कहा—

किं मां मोहयसीश त्वं किमन्यैर्देव मे वरैः।
त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मजन्मान्तरेष्वपि॥
कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु
रक्षःपिशाचमनुजेष्वपि यत्र तत्र।
जातस्य मे भवतु केशव ते प्रसादात्
त्वय्येव भक्तिरचलाव्यभिचारिणी च॥

'हे प्रभो! आप मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं? मुझे दूसरे किसी वरकी आवश्यकता नहीं। जन्म-जन्मान्तरमें मेरी आपके चरणोंमें अटल, अचल भक्ति बनी रहे। मैं कीट-पतंग, पशु-पक्षी, साँप-अजगर, राक्षस-पिशाच या मनुष्य—किसी भी योनिमें जन्म क्यों न ग्रहण करूँ, हे केशव! आपकी कृपासे आपमें मेरी सदा-सर्वदा अचल, अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहे।'

चतुर भक्तगण मुक्ति न चाहकर भक्ति ही चाहा करते हैं। मुक्ति तो भक्तिके पीछे-पीछे लगी रहती है। भगवान् उत्तंककी चतुराईपर प्रसन्न हो गये और 'तथास्तु' कहकर अपने दिव्य शंखको उनके अंगसे स्पर्श करा दिया और योगियोंको भी दुर्लभ दिव्य ज्ञान उन्हें प्रदान कर दिया। तदनन्तर विप्रश्रेष्ठ उत्तंकने फिर भगवान्‌की स्तुति की। भगवान् माधव परम प्रसन्नताके साथ उत्तंकके मस्तकपर हाथ रखकर उन्हें कृतकृत्य करते हुए अन्तर्धान हो गये। उत्तंक भी कृतार्थ होकर शेष जीवन भगवान्‌की सेवामें लगाते हुए परमधामको चले गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त आरण्यक मुनि

त्रेतायुगसे पहलेकी बात है। आरण्यक मुनि वनमें रहकर घोर तपस्या करते थे। उनका उद्देश्य था परमात्माको जानकर परमानन्द और परम शान्तिको प्राप्त करना। परन्तु उद्देश्य सफल नहीं हुआ। तब मुनिवर मूल परमात्मतत्त्वको जाननेके लिये किसी ज्ञानी महापुरुषकी खोजमें निकले। अनेक तीर्थोंमें घूमे, बहुत लोगोंसे बातें कीं; परन्तु कहीं भी मनोरथ पूरा नहीं हुआ। एक दिन उन्होंने देखा कि दीर्घजीवी महर्षि लोमश तीर्थयात्राके लिये स्वर्गसे आये हैं। मुनिने जाकर लोमशजीके चरणोंमें प्रणाम किया और विनयपूर्वक पूछा—'हे भगवन्! दुर्लभ मनुष्यदेहको प्राप्त करके जीव किस उपायसे इस दुस्तर संसार-सागरसे पार जा सकता है? ऐसा कोई देवता, व्रत, दान, जप या यज्ञ हो तो कृपा करके बतलाइये, जिसके सेवनसे मैं घोर संसार-समुद्रसे पार हो सकूँ।' आरण्यक मुनिकी बात सुनकर महर्षि लोमशने कहा—'दान, तीर्थ, व्रत, यम, नियम, योग, यज्ञ आदि सभी साधन उत्तम हैं; परन्तु इनका फल स्वर्ग ही है। स्वर्ग विनाशी है। पुण्य जबतक रहता है, तबतक जीव स्वर्गके भोग भोगता है; पुण्य पूरे होते ही वहाँसे उसे फिर नीचे गिरना पड़ता है। अतएव जो लोग नाशवान् स्वर्ग-सुखके लिये ही दान, पुण्यादि करते हैं, वे कुछ भी शुभ कर्म न करनेवाले मूढ़ पुरुषोंकी अपेक्षा उत्तम होनेपर भी वस्तुतः बुद्धिमान् नहीं हैं। मैं तुम्हें एक गोपनीय बात बतलाता हूँ—'श्रीरामसे बढ़कर कोई देवता नहीं, रामसे उत्तम कोई व्रत नहीं, रामसे उत्कृष्ट कोई योग

नहीं और रामसे ऊँचा कोई यज्ञ नहीं है। श्रीरामके नामका जप और श्रीरामका भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य इस लोक और परलोकमें परम सुखी होता है और अनायास ही संसार-सागरसे तरकर भगवान्को प्राप्त होता है। श्रीरामका स्मरण-ध्यान करनेसे मनुष्यकी सारी कामनाएँ श्रीरामकी कृपासे पूरी होती हैं और जिससे वह परमपदको प्राप्त कर सके, ऐसी दुर्लभ अपनी भक्ति श्रीराम उसे दे देते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न, उत्तम कर्म करनेवाले पुरुषोंके लिये तो कहना ही क्या है, चाण्डाल भी श्रीरामका प्रेमपूर्वक स्मरण करके परमगतिको प्राप्त होते हैं। श्रीराम ही एकमात्र परम देवता हैं, रामार्चन ही प्रधान व्रत है, रामनाम ही सर्वोत्तम मन्त्र है और जिनमें रामकी स्तुति है, वही उत्तम शास्त्र है। अतएव तुम मन लगाकर दिव्य मनोहर मूर्ति श्रीरामचन्द्रका ही भजन करो। श्रीरामके भजनसे तुम अपार संसार-सागरसे गोपदकी तरह तर जाओगे।'

महर्षि लोमशकी बात सुनकर आरण्यक मुनिको बड़ी आशा हुई और प्रसन्नचित्तसे उन्होंने फिर पूछा कि 'भगवन्! यदि मुझपर आपकी परम कृपा है तो अनुग्रह करके मुझे श्रीरामचन्द्रका स्वरूप बतलाइये, जिससे मैं उस स्वरूपका ध्यान करके कृतार्थ हो सकूँ।' इसपर महर्षि लोमश सन्तुष्ट होकर कहने लगे कि 'हे मुनिवर! सुनो, मैं तुमसे श्रीरामचन्द्रका ध्यानके योग्य स्वरूप बतलाता हूँ। इस स्वरूपका मन लगाकर ध्यान करनेसे सब मनोरथ निश्चय ही पूर्ण हो जाते हैं।'

'रमणीय अयोध्या नगरीमें कल्पतरुके नीचे विचित्र मण्डपमें भगवान् श्रीरामचन्द्र विराजमान हैं। महामरकतमणि, नीलकान्त-

मणि और स्वर्णसे बना हुआ अत्यन्त मनोहर उनका सिंहासन है। सिंहासनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही है। नवदूर्वादलश्याम सौन्दर्यसागर देवेन्द्रपूजित भगवान् श्रीरघुनाथजी सिंहासनपर बैठे अपनी छटासे मुनियोंका मन हरण कर रहे हैं। उनका मनोमुग्धकारी मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी छबिको लज्जित कर रहा है। उनके कानोंमें दिव्य मकराकृत कुण्डल झलमला रहे हैं, मस्तकपर किरीट शोभित है। किरीटमें जड़ी हुई मणियोंकी रंग-बिरंगी प्रभासे सारा शरीर रंजित हो रहा है। मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं। उनके मुखमें सुधाकरकी किरणों-जैसी दन्तपंक्ति शोभा पा रही है। उनके होठ और अधर विद्रुममणि-जैसे मनोहर कान्तिमय हैं, जिसमें अन्यान्य शास्त्रोंसहित ऋक्, साम आदि चारों वेदोंकी नित्यस्फूर्ति हो रही है, जवाकुसुमके समान ऐसी मधुमयी रसना उनके मुखके भीतर शोभा पा रही है। उनकी सुन्दर देह कम्बु-जैसे कमनीय कण्ठसे सुशोभित है। उनके दोनों कन्धे सिंह-कन्धोंकी तरह ऊँचे और मांसल हैं। उनकी लम्बी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँची हुई हैं। अँगूठीमें जड़े हुए हीरोंकी आभासे अंगुलियाँ चमक रही हैं। केयूर और कंकण निराली ही शोभा दे रहे हैं। उनका सुमनोहर विशाल वक्षःस्थल श्रीलक्ष्मी और श्रीवत्सादि विचित्र चिह्नोंसे विभूषित है। उदरमें त्रिवली है, गम्भीर नाभि है और मनोहर कटिदेश मणियोंकी करधनीसे सुशोभित है। उनकी सुन्दर निर्मल जंघाएँ और मनोहर घुटने हैं। योगिराजोंके ध्येय उनके परम मंगलमय चरणयुगलमें—वज्र, अंकुश, यव और ध्वजादिके चिह्न अंकित हैं। हाथोंमें धनुष-बाण और कन्धेपर तरकस शोभित है। मस्तकपर सुन्दर

तिलक है और अपनी इस छबिसे वे सबका चित्त जबरदस्ती अपनी ओर खींच रहे हैं।'

इस प्रकार भगवान्‌के ध्यानस्वरूपका वर्णन करके लोमशजीने कहा—'हे मुनि! तुम इस तरह श्रीरामका ध्यान और स्मरण करोगे तो अनायास ही संसार-सागरसे पार हो जाओगे।'

लोमशजीकी बात सुनकर आरण्यक मुनिने उनसे विनम्र शब्दोंमें कहा—'भगवन्! आपने कृपा करके मुझे श्रीरामका ध्यान बतलाया सो बड़ा ही अच्छा किया। मैं आपके उपकारके भारसे दब गया हूँ, परन्तु नाथ! इतना और बतलाइये कि 'ये राम कौन हैं, इनका मूलस्वरूप क्या है और ये क्यों अवतार लेते हैं?'

महर्षि लोमशजीने कहा कि 'हे वत्स! पूर्ण सनातन परात्पर परमात्मा ही श्रीराम हैं। समस्त विश्वब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति इन्हींसे हुई है; यही सबके आधार, सबमें फैले हुए, सबके स्वामी, सबके सृजन, पालन और संहार करनेवाले हैं। सारा विश्व इन्हींकी लीलाका विकास है। समस्त योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर दयासागर ये प्रभु जीवोंकी दुर्गति देखकर उन्हें घोर नरकसे बचानेके लिये जगत्‌में अपनी लीला और गुणोंका विस्तार करते हैं, जिनका गान करके पापी-से-पापी मनुष्य भी तर जाते हैं। ये राम इसी हेतु अवतार धारण करते हैं।'

इसके बाद आरण्यक मुनिके पूछनेपर लोमशजीने संक्षेपमें समस्त रामचरित्र उन्हें सुनाया और उनसे कहा कि 'भगवान् श्रीरामजीके अश्वमेधयज्ञके घोड़ेके साथ रहनेवाले रामानुज शत्रुघ्नजी जब तुम्हारे आश्रमपर पधारेंगे, तब उनसे पता पाकर तुम भगवान् श्रीरामका साक्षात् दर्शन कर सकोगे और तभी तुम उनमें लीन हो सकोगे।'

महर्षिवर लोमशजीके उपदेशानुसार मुनि आरण्यक रेवा नदीके तटपर एक जीर्ण-सी कुटियामें निवास करते हुए अपना सारा समय श्रीरामजीके भजन और ध्यानमें लगाने लगे।

इस प्रकार बहुत काल बीत गया। मुनिवर भगवान् श्रीरामके भजन-ध्यानमें मस्त होकर तनकी सुधि भूल गये और नित्य परमानन्दमें मग्न रहने लगे। तदनन्तर एक दिन श्रीरामके अश्वमेधयज्ञका घोड़ा मुनिकी कुटियाके पास आ पहुँचा। उसके पीछे-पीछे विशाल सेनाको लिये हुए, बड़े-बड़े वीरोंके संग श्रीशत्रुघ्नजी भी चले जा रहे थे। उन्होंने रेवाके तटपर जीर्ण-सा आश्रम देखकर अपने साथी वीरवर सुमतिसे पूछा कि यह आश्रम किस मुनिका है? सुमतिके बतलानेपर शत्रुघ्नजी मुनिकी कुटियापर पहुँचे। मुनिने उनका स्वागत किया और अन्तमें यह जानकर कि ये रामानुज श्रीशत्रुघ्न हैं, उन्हें लोमशजीके वचन याद आ गये। मुनि हर्षके मारे उछल पड़े। 'अहा! आज चिरकालकी साध पूरी होगी। आज मुझे इन आँखोंसे भगवान् श्रीरामके दर्शन होंगे, आज मेरा जीवन सफल होगा।' यों मनोरथ करते-करते मुनिवर आरण्यक अयोध्याजीकी ओर चल पड़े। उन्होंने देवदुर्लभ परम रमणीय अयोध्या नगरीमें जाकर देखा—सरयूजीके तटपर एक सुरम्य मण्डपमें पद्मपलाशलोचन नवदूर्वादलश्याम भगवान् श्रीरामचन्द्र विराजमान हैं। अनेक महामहिम मुनियोंने उन्हें चारों ओरसे घेर रखा है। उनके दोनों ओर भरत और लक्ष्मण विराजित हैं। दीन-दरिद्रोंको मनमानी वस्तुएँ दी जा रही हैं। मुनिवर आरण्यक भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्यराशि मधुरस्वरूपको देखकर मन्त्रमुग्धकी भाँति टकटकी लगाये

खड़े रह गये। उनकी पलकें पड़नी बन्द हो गयीं, शरीर पुलकित हो गया, आँखोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली। मुनिने आज अपने जीवनको सफल और धन्य समझा। इधर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने जब परम तेजस्वी तपोमूर्ति मुनिको इस दशामें देखा तो वे सहसा उठ खड़े हुए और मुनिके चरणोंमें प्रणाम करने लगे। इन्द्रादि बड़े-बड़े देवता सिर झुकाकर अपने किरीट-मणियोंकी प्रभासे जिनके चरणयुगलोंको चमकाते रहते हैं, वही महामहिम भगवान् श्रीरामचन्द्र 'हे ब्राह्मणदेव! आज आपने मेरे शरीरको पवित्र कर दिया' यों कहकर मुनिके चरणोंपर गिर पड़े। महातपस्वी आरण्यक मुनिने उन प्रणतप्रिय प्रभु भगवान् रामचन्द्रको शीघ्र ही दोनों भुजाओंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। तदनन्तर भगवान् श्रीरामचन्द्रने मुनिको ऊँचे मणिमय आसनपर बैठाकर उनके चरण धोये और 'आज मैं अपने बन्धु-बान्धवोंसहित पवित्र हो गया' यों कहकर मुनिके चरणोदकको अपने मस्तकपर छिड़क लिया। इसके बाद बड़ी ही विनयपूर्ण भाषामें भगवान्ने कहा—'हे स्वामिन्! मेरा अश्वमेधयज्ञ आपके यहाँ पधारनेसे सफल हो जायगा। आपकी चरण-धूलिसे पवित्र होकर यह अश्वमेधयज्ञ शीघ्र मुझे रावणकुम्भकर्णादि ब्राह्मणसन्तानके वधसे प्राप्त हुई ब्रह्महत्यासे मुक्त कर देगा।'

भगवान् श्रीरामके इन शब्दोंको सुनकर मुनिने हँसकर बड़े ही मधुर शब्दोंमें कहा, 'भगवन्! आप मर्यादाके रक्षक ऐसी बातें न कहेंगे तो और कौन कहेगा? वेदज्ञ ब्राह्मण आपकी ही मूर्ति हैं। आप दूसरे राजाओंके सामने सुन्दर आदर्श रखनेके लिये ही ऐसा आचरण कर रहे हैं; परन्तु भगवन्!

ब्रह्महत्याके पापसे छूटनेके लिये आप अश्वमेधयज्ञ कर रहे हैं, यह सुनकर तो मैं अपनी हँसीको नहीं रोक सकता। धन्य है मर्यादापुरुषोत्तम, आपकी मर्यादाको! भला, सारे शास्त्रोंसे विपरीत आचरण करनेवाला सर्वथा मूर्ख और पापी मनुष्य भी जिसका नाम-स्मरण करते ही पापोंके महान् समुद्रको लाँघकर परमपदको पा जाता है, वह ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त होनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करे—यह क्या कम मजाककी बात है? हे भगवन्! जबतक मनुष्य आपके नामका भलीभाँति उच्चारण नहीं करता, तभीतक ब्रह्महत्यादि महान् पाप गरजा करते हैं। हे महाराज! रामनामरूपी सिंहकी गर्जना सुनते ही महापापरूपी सब हाथी जान बचानेके लिये न मालूम किधर भाग जाते हैं कि फिर ढूँढ़नेपर भी उनका पता नहीं लगता। मैंने पहले गंगातीरवासी मुनियोंसे सुना था कि जबतक सुस्पष्टरूपसे आपके मनोहर रामनामका उच्चारण नहीं किया जाता, तभीतक व्याकुलहृदय महापापी मनुष्योंको पाप-तापका भय रहता है। हे श्रीरामचन्द्र! मैं धन्य हूँ; जो आज आपके दर्शन पाकर अनायास ही संसारतापसे मुक्त हो गया हूँ।'

आरण्यक मुनिके इन वचनोंको सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उनकी यथोचित पूजा की। उपस्थित मुनिगण श्रीरामकी यह लीला देखकर 'धन्य-धन्य' की ध्वनि करने लगे। मुनिवर आरण्यकने, सदा जिनका वे ध्यान किया करते थे, उन भगवान्‌का साक्षात् दर्शन करके परम आनन्दित होकर मुनियोंसे कहा—'हे मुनिगण! आपलोग मेरे महाभाग्यकी ओर तो देखिये। स्वयं भगवान् रामचन्द्र जब मुझको प्रणाम करके मेरा स्वागत करते हैं, तब मेरे समान जगत्‌में दूसरे किस भाग्यवान्‌ने जन्म

लिया है? वेद नित्य जिनके चरणकमलोंकी खोजमें लगे रहते हैं, वे भगवान् मेरा चरणोदक लेकर अपनेको पवित्र मानते हैं। अहा! आज मैं धन्य हो गया!' यों कहते ही भगवान् श्रीरामके सामने ही मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फट गया। बड़े जोरकी आवाज हुई। स्वर्गमें दुन्दुभी बजने लगी। आकाशसे देवता फूल बरसाने लगे। मुनियोंने आश्चर्यचकित होकर देखा, आरण्यकके देहमेंसे एक विचित्र तेज निकलकर श्रीरामके सुन्दर बदनमें समा गया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त पुण्डरीक

महामति पुण्डरीक शास्त्रोंके ज्ञाता, वेद-वेदांगमें निपुण, तप और स्वाध्यायके प्रेमी, इन्द्रियोंको जीते हुए, क्षमाशील ब्राह्मणकुमार थे। प्रतिदिन नियमसे त्रिकाल-सन्ध्या और सुबह-शाम विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते थे। जल, ईंधन और पुष्पादिके द्वारा उन्होंने बहुत दिनोंतक श्रद्धापूर्वक गुरुकी सेवा की थी। वे नित्य प्राणायाम और जगत्पति भगवान् विष्णुका ध्यान करते थे। उनके मनमें अभिमान और डाह नहीं थे। भक्तिपूर्वक माता-पिताकी सब प्रकारकी सेवा करने और उन्हें सुख पहुँचानेमें उन्हें बहुत प्रीति थी। सारांश यह है कि पुण्डरीकजी अपने वर्णाश्रमोचित कर्मोंका भलीभाँति पालन करते हुए ही सर्वव्यापी भगवान्की आराधना करते थे। भगवान्को स्मरण करते हुए भगवान्के लिये ही वे लौकिक और वैदिक समस्त धर्मोंका पालन करते थे। यों करते-करते जब उनके अन्तःकरणकी शुद्धि हो गयी और संसारके किसी भी पदार्थमें उनकी उतनी आसक्ति, ममता, स्पृहा या कामना नहीं रही, तब अपने शुद्ध हृदयमें उन्हें भगवान्का आह्वान सुनायी दिया और वे उसी क्षण सब कुछ छोड़-छाड़कर प्रियतमको पानेके लिये अभिसारिणीके रूपमें वहाँसे चल पड़े। संसाररूपी समुद्रसे तारनेवाली विमल बुद्धिके प्रकाशने उनके समस्त मोह-तमको हटा दिया। वे माता, पिता, भाई, सुहृद्, स्वजन, मित्र, मामा, सखा-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव, धन-धान्यसे भरा हुआ इन्द्रपुरीके समान घर और सब प्रकारकी वस्तुओंको उत्पन्न करनेवाली उर्वरा भूमिको तिनकेके समान त्यागकर

महासुखी हो गये*। जिनका मन रामके लिये व्याकुल हो उठता है, उन्हें विषयोंका आराम नहीं भाता। उन्हें उसके त्यागमें ही महासुख मिलता है। यह कर्मत्याग पहले किये हुए शुभ कर्मोंके आचरणका ही सुन्दर फल होता है। धर्मोंके विधिपूर्वक निष्कामभावसे पालन करनेपर ही अन्तःकरण शुद्ध होकर भगवान्‌को पानेके लिये व्याकुल हो उठता है। फिर उसे आधे क्षणका भी भगवान्‌का वियोग असह्य हो जाता है और वह अपने प्रियतम भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये किसी भीज्वस्तुके त्याग, किसी भी कष्टके सहन, किसी भी तपके आचरण, किसी भी मार्गके अनुसरण तथा किसी भी विपत्तिके वरण करनेके लिये लालायित हो जाता है। कुछ भी हो भगवान् मिलने चाहिये। अस्तु।

भक्त पुण्डरीक साग, मूल या फल—जो कुछ मिल जाता, उसीसे उदरनिर्वाह करते हुए प्रियतमकी खोजमें देश-देशान्तरोंमें घूमने लगे। उन्होंने सभी प्रधान-प्रधान तीर्थोंमें भ्रमण किया। घूमते-घूमते एक दिन वे शालग्राम नामके एक गाँवमें जा पहुँचे। यह स्थान बहुत ही रम्य, पवित्र, एकान्त, भगवदीय चिह्नोंसे भूषित था। यहाँ बड़े-बड़े तत्त्वज्ञ महात्मा रहते थे। इस पुण्यतीर्थमें विविध पवित्र जलाशय और कुण्ड थे। पुण्डरीकने उनमें स्नान किया। इस विशुद्ध तीर्थमें उनका मन लग गया। वे वहीं रहकर

---

* मातरं पितरं चैव भ्रातॄनथ सुहृज्जनान्।
मित्राणि मातुलांश्चैव सखीन् सम्बन्धिबान्धवान्॥
धनधान्यसमृद्धं च गृहं वा शक्रसन्निभम्।

क्षेत्राणि सुमहार्हाणि सर्वशस्योद्भवानि च॥
परित्यज्य महासत्त्वस्तृणानीव महासुखी।

(पद्म०, उ० ८०)

परम भक्तिके साथ भगवान्‌का सतत ध्यान करने लगे। उनके मनसे राग-द्वेष दूर हो गये। हृदय परम पवित्र हो गया। उसमें भगवान्‌की शक्ति मानो उतर आयी। वे अपने अन्दर भगवद्भावका प्रत्यक्ष अनुभव करने लगे। मूर्तिमान् स्वधर्मकी भाँति विराजित हुए उन्होंने अपनी आराधनासे भगवान्‌को सन्तुष्ट कर लिया। अतएव भगवान्‌ने अपने परम भक्त देवर्षि नारदको बुलाकर कहा कि 'वत्स! मेरे प्यारे भक्त पुण्डरीककी भक्तिसे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम जाओ, उसकी भक्तिको और भी सुदृढ़ करनेके लिये उसे उचित उपदेश दो।'

भगवान्‌की आज्ञा पाकर भक्तशिरोमणि नारदजी भक्तको दर्शन देनेके लिये या अपने भगवान्‌के द्वारा प्रशंसित भाग्यवान् भक्तका दर्शन पानेके लिये वैकुण्ठसे चल पड़े। परमार्थके तत्त्वज्ञ, साक्षात् भगवान्‌के हृदयस्वरूप श्रीनारदजीका चित्त पवित्र भक्तिरसकी बाढ़से सदा ही उछला करता है। वे भक्तोंके हितके लिये ही सदा-सर्वदा जहाँ-तहाँ विचरण करते रहते हैं। साक्षात् सूर्यके समान महातेजस्वी (**'सुमह्यतेजाः साक्षादादित्यसन्निभः'**) भक्तराज नारदजी मधुर वीणा बजाते, पवित्र हरिगुण गाते और मन्द-मन्द मुसकराते हुए तपोनिधि पुण्डरीकके स्थानपर पहुँचे। महामना पुण्डरीकने तेजोमण्डलसे घिरे हुए सर्ववेदनिधि नारदजीको सामने उपस्थित देखकर तुरंत खड़े होकर प्रणाम किया। नारदजीके दर्शनसे ही उनके रोमांच हो आया। नेत्रोंमें आनन्दाश्रु आ गये, पुण्डरीकजीने प्रेमविह्वल चित्तसे उन्हें अर्घ्यादि देकर पुनः प्रणाम किया। वे नारदजीका मनोहर वेष देखकर मन-ही-मन सोचने लगे—ये प्रसन्नमुख, वीणाधारी, महातेजस्वी महात्मा कौन हैं? साक्षात् सूर्य, अग्नि या वरुणदेव तो नहीं हैं? इस प्रकार विचार

करते-करते कुछ भी स्थिर न कर सकनेपर पुण्डरीकजीने पुनः प्रणाम करके पूछा, 'प्रभो! अमिततेजस्वी महानुभाव आप कौन हैं और यहाँ आपका कहाँसे शुभागमन हुआ है? हे भगवन्! आप-सरीखे महात्माओंके दर्शन इस धरामण्डलमें बहुत ही दुर्लभ हैं। मैंने तो आजतक आपके सदृश किसी पुरुषके दर्शन नहीं किये। हे स्वामिन्! कृपा करके बतलाइये, दासको अपने दर्शनसे कृतार्थ करनेवाले आप कौन हैं?' नारदजीने मुसकराते हुए कहा, 'भक्तवर! मैं तुम्हारे दर्शन करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम-सरीखे भक्तोंसे मिलनेमें मुझे बहुत सुख मिलता है। भक्तोंका अमित प्रभाव होता है। हे द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारी तो बात ही क्या है; याद करने, सन्तुष्ट करने अथवा पूजा करनेपर भगवान्‌का प्यारा भक्त चाण्डाल भी जीवोंको पवित्र कर देता है*। मेरा तो इतना ही परिचय है कि मैं तीनों लोकोंके एकमात्र साक्षी, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी (निर्गुण और सगुणरूप) देवदेव भगवान् श्रीवासुदेवका दास हूँ।'

इतना कहते ही नारदजीको पहचानकर पुण्डरीक प्रेमावेशसे पुलकित हो गये और कुछ देर बाद धैर्य धारणकर गद्‌गद वाणीसे कहने लगे—'प्रभो! आज शरीरधारियोंमें मैं धन्य हो गया, मैं देवपूज्य हो गया। मेरे सब पुरखे आज तर गये। मेरा जन्म सफल हो गया। अब हे देवर्षे! अपने इस भक्त और दासके प्रति विशेष कृपा करके जो कुछ मेरे योग्य हो सो उपदेश कीजिये। परम गोपनीय होनेपर भी छिपाइये नहीं। आप सभी जीवोंके, खास

* स्मृतः सन्तोषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम।
पुनाति भगवद्भक्तश्चाण्डालोऽपि यदिच्छया॥
(पद्म०, उ० ८०)

करके हरिके मार्गपर चलनेवालोंके तो एकमात्र गति हैं। मुझ संसार-सागरमें डूबे हुएको बचाइये।'

पुण्डरीककी अभिमानशून्य, सरल, विनयपूर्ण वाणी सुनकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उनको सच्चा भक्त जानकर भगवान्‌के आज्ञानुसार कुछ कहना आरम्भ किया। नारदजी बोले—

'हे द्विजोत्तम! इस लोकमें अनेक प्रकारके मनुष्य हैं और उनके अनेक मत हैं। नाना प्रकारके तर्कोंसे सब अपने-अपने मतोंका समर्थन करते हैं; मैं सबके तर्कोंको समझकर जो निश्चित परमार्थतत्त्व है, वही तुमसे कहता हूँ। यह परमार्थतत्त्व सहज ही समझमें नहीं आता। तत्त्ववेत्तागण प्रमाणद्वारा ही इसका प्रतिपादन करते हैं। जो लोग मूर्ख हैं, वे केवल प्रत्यक्ष और वर्तमान प्रमाणको ही मानना चाहते हैं। वे अनागत, अतीत प्रमाणोंको स्वीकार नहीं करते। मुनिगण कहते हैं कि जो पूर्वरूप है—परम्परासे चला आता है, वही आगम है, यह आगम ही प्रमाण है। इसीसे परमार्थतत्त्वकी सिद्धि होती है। जिसके अभ्याससे ज्ञान होता है, राग-द्वेषका मल नष्ट होता है, वही आगम है। जो कर्म, कर्मफल, तत्त्व, विज्ञान, दर्शन और विभु है, जिसमें जाति आदिकी कोई कल्पना नहीं है, जो नित्य आत्मसंवेदन है, जो सनातन, अतीन्द्रिय, चेतन, अमृत, अज्ञेय, अनन्त, अज, अविनाशी, अव्यक्त, व्यक्त, व्यक्तमें स्थित और निरंजन है, वही द्वितीय आगम है। वही विश्वमें व्याप्त होनेके कारण विष्णु कहलाता है, उसीके और भी अनेक नाम हैं। परमार्थसे विमुख व्यक्ति उस योगियोंकी परम ध्येय वस्तुको प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे नहीं जान सकते।'

भक्तगण किसी बातको कहते हैं तो उसमें यह अभिमान नहीं आने देते कि यह हमारा मत है; क्योंकि उनका अपना मत कुछ रहता ही नहीं, वे तो अपना सब कुछ भगवान्‌में मिला देते हैं, भगवान्‌का मत ही उनका मत होता है। वस्तुतः संसारमें नया कुछ भी नहीं है। पुराना ही नये-नये रूपोंमें प्रत्यक्ष होता है। अतएव नारदजी अपनी ओरसे उपदेश न देकर अब पुराने इतिहासका संकेत करके कहने लगे कि 'हे निष्पाप पुण्डरीक! एक समय मैंने ब्रह्मलोकमें पितामह ब्रह्माजीसे विनयपूर्वक प्रणाम करनेके अनन्तर इस विषयमें पूछा था, उसका जो कुछ उत्तर उन्होंने मुझको दिया था, वह मैं तुमसे कहता हूँ।' ब्रह्माजीने कहा था कि 'भगवान् श्रीनारायण ही सब भूतोंके आत्मा, जगदाधार, पचीस तत्त्वोंके रूपमें प्रकाशित सनातन परमात्मा हैं। जगत्‌का सृजन, पालन और संहार उन नारायणदेवसे ही होता है। वही विश्व, तैजस और प्राज्ञ—ये त्रिविध आत्मा हैं; वही सबके अधीश्वर, एकमात्र सनातन देवदेव हैं। ज्ञानयोगीगण ज्ञानकी साधनाके द्वारा इन्हीं जगन्नाथ नारायणदेवका साक्षात्कार करते हैं। जिनका चित्त श्रीनारायणमें विलीन है, जिनके प्राण श्रीनारायणमें समर्पित हैं, जो केवलमात्र श्रीनारायणके ही परायण हैं, वे श्रीनारायणकी कृपा और शक्तिसे अपने ज्ञाननेत्रोंद्वारा वर्तमान, भूत और भविष्यको देख सकते हैं। इस जगत्‌में बीता हुआ, वर्तमान और होनेवाला, समीप और दूर, स्थूल और सूक्ष्म कुछ भी उनसे अज्ञात नहीं रहता।

'पितामह ब्रह्माजीने इन्द्रादि देवताओंसे भी एक दिन कहा था कि 'धर्म नारायणके आश्रित है; सब सनातन लोक, यज्ञ,

शास्त्र, सब अंगोंसहित वेद और अन्य जो कुछ भी है, सब श्रीनारायणके ही आधारपर है। वे नारायण ही विष्णु हैं, वही विश्वेश्वर हरि हैं। वे अव्यक्त पुरुष ही पृथ्वी आदि पंचभूत हैं। यह सारा जगत् केवल विष्णुमय ही है। पापी मनुष्य इस तत्त्वको नहीं जानते। वे नारायण ही अपनी मायासे इस चराचर विश्वमें व्याप्त हैं। जिनका चित्त उन नारायणमें लगा है, जिनका जीवन उनके अर्पण है, ऐसे परमार्थके ज्ञाता पुरुष ही उनको जानते हैं। श्रीनारायण ही सब भूत हैं, सब भूतोंमें व्याप्त हैं और सब भूतोंके ईश्वर हैं। वही तीनों लोकोंका पालन करते हैं। समस्त जगत् उन्हींमें प्रतिष्ठित है और उन्हींसे उत्पन्न है। वही इस जगत्के संहारमें रुद्ररूपसे, पालनमें विष्णुरूपसे और सृजनमें ब्रह्मारूपसे नियुक्त हैं। वही अन्यान्य लोकपालगण हैं। वे परात्पर पुरुष ही सर्वाधार, निराधार, सकल, निष्कल, अणु और महान् हैं। उन परम प्रभु देवदेवके ही शरण सबको होना चाहिये।' ब्रह्माजीने ऐसा कहा था, अतएव हे विप्रर्षे! तुम भी नारायणके परायण हो जाओ। उनको छोड़कर कौन ऐसा देव है जो हमें मनमाना पदार्थ दे सकता है? वे पुरुषोत्तम देव ही पिता-माता हैं, वे ही लोकेश, देवदेव और जगत्पति हैं। उन्हींके शरण हो जाओ। अग्निहोत्र, तप, अध्ययन—अपने सभी कर्मोंसे नित्य-निरन्तर सावधानीके साथ एकमात्र उन्हींको संतुष्ट करना चाहिये। अतएव तुम उन पुरुषोत्तमका ही आश्रय ग्रहण करो; उनके शरण होनेपर न तो बहुत-से मन्त्रोंकी आवश्यकता है और न व्रतोंका ही प्रयोजन है। एक '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्र ही सब मनोरथोंकी पूर्ति करनेवाला है। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ!

उनकी आराधनामें किसी बाहरी वेषकी जरूरत नहीं है। कपड़े पहने हो या न पहने हो, जटाधारी हो या सिर मुड़ाये हो, त्यागी हो या गृहस्थ हो, सभी अनन्य मनसे भक्तिपूर्वक उनकी आराधना कर सकते हैं। चिह्न धर्मका कारण नहीं है (**'न लिङ्गं धर्मकारणम्'**)। वरं जो लोग पहले निर्दयी, दुष्टात्मा और सदा पापोंमें ही लगे रहते हैं। वे भी नारायणपरायण होनेपर सनातन परमधामको प्राप्त होते हैं। भगवान्‌के निष्पाप भक्त पापके कीचड़में कभी लिप्त नहीं होते। अहिंसासे चित्तको जीते हुए वे भक्त सब लोकोंको पवित्र करते हैं। प्राचीन कालमें प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले एक शिकारी राजा नारायणपरायण होकर परमधामको प्राप्त हुए हैं। परम तत्त्वज्ञ राजा अम्बरीषजी भगवान् हृषीकेशकी आराधना करके वैष्णवपदको पा चुके हैं। अनेक शान्तचित्त ब्राह्मणोंने भगवान्‌का ध्यान करके सिद्धि प्राप्त की है। असुरबालक प्रह्लादने परम आह्लादके साथ भगवान् श्रीनारायणदेवकी सेवा, पूजा और ध्यान करके हरिके द्वारा सुरक्षित रहकर परमपद पाया है। तेजस्वी राजा भरत श्रीहरिकी उपासना करके परमशान्तिको पा चुके हैं। श्रीहरिकी आराधनासे सभीको परमगति मिल सकती है और श्रीहरिकी आराधनाके बिना किसीको भी परमगति नहीं मिलती—चाहे वह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी कोई भी क्यों न हो। हजारों जन्मोंके अनन्तर भगवत्कृपासे जिसको ऐसी सुबुद्धि प्राप्त होती है कि 'मैं हरिभक्तोंका दास हूँ' वह पुरुष भी भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है। फिर जो महापुरुष अनन्यचित्त हैं और प्रेमसे परिप्लावितहृदय हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है। इसीलिये तत्त्वके जाननेवाले पुरुष सब

ओरसे चित्तको हटाकर अनन्य चित्तसे नित्य-निरन्तर उन सनातन परमात्मदेवका ध्यान ही करते हैं।'

देवर्षि नारदजी इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। धर्मात्मा पुण्डरीककी नारायणपरायणता और भी दृढ़ एवं उज्ज्वल हो गयी, वे '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्रका जप करने लगे और भगवान्‌के अमृतमय मधुर ध्यानमें निमग्न हो गये। उनकी स्थिति बहुत ही ऊँची होने लगी, अन्तमें यहाँतक पहुँची कि अमृतात्मक भगवान् गोविन्ददेव उनके हृदय-कमलपर आ विराजे। सारा अन्तःकरण भगवान्‌के पवित्र संसर्गसे दीप्तिमान् और भगवन्मय हो गया। अब उनकी बुद्धि और मनमें भगवान् केशवको छोड़कर स्वप्नमें भी कोई चीज नहीं रह गयी, यहाँतक कि पुरुषार्थका विरोध करनेवाली निद्रा भी नष्ट हो गयी।

बुद्धि और मनमें भगवान्‌का आविर्भाव होकर उनका दिव्य भगवत्-रूपमें परिणत हो जाना बहुत-से महापुरुषोंमें देखा-सुना जाता है, परंतु स्थूल देहमें दिव्यत्वकी प्राप्ति कदाचित् ही कहीं होती है। पुण्डरीकजीने समस्त भुवनोंके एकमात्र साक्षी पुरुषोत्तम वासुदेव भगवान्‌की परम कृपासे अपने निष्पाप देहमें इसी परम दिव्य वैष्णवी सिद्धिको प्राप्त किया। पुण्डरीकने देखा, उनका अंग श्यामवर्ण हो गया है, चार भुजाएँ हो गयी हैं—जिनमें शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं, पवित्र पीत वस्त्र है, तेजोमण्डलने उनके शरीरको घेर लिया है और वे पुण्डरीकाक्ष बन गये हैं। वनके सिंह, व्याघ्र और अन्यान्य हिंसक पशु सहज ही सारे वैरभावको भुलाकर उनके समीप एकत्र हो रहे हैं और प्रसन्न मनसे यथेच्छ

प्रेमपूर्वक विचरण कर रहे हैं। इस प्रकार विरोधी जीव परस्पर हितैषी हो गये, नदी और सरोवरोंका जल प्रसन्न और मधुरतम बन गया। शीतल सुगन्ध सुखकर वायु बहने लगा, ऋतु सुप्रसन्न हो गयी, वनके वृक्षसमूह सुगन्धित और मधुर पुष्प-फलके भारसे लदकर नत हो गये। सभी पदार्थ पुण्डरीकके अनुकूल और परम सुखकर हो गये। भक्तवत्सल देवदेवेश्वर भगवान्‌के प्रसन्न होनेपर समस्त चराचर जगत् प्रसन्न हो ही जाता है, सभी जीव और प्रकृतिकी सारी वस्तुएँ उस जगद्वन्द्य भक्तकी सेवा कर अपने जीवनको सफल करना चाहती हैं।

यों तो अब पुण्डरीकजीका देह, मन, बुद्धि—सब कुछ भगवन्मय हो गया था; परंतु भक्तके हृदयनिधि कमलदललोचन भगवान् अपने भक्त पुण्डरीकको जगत्प्रसिद्ध पावन बनाने और इस भक्तिका चरम फल देनेके लिये स्वयं अपने दिव्य मंगल स्वरूपमें उनके सामने आविर्भूत हुए। भगवान्‌के तीन हाथोंमें शंख, चक्र और गदा हैं; एक हाथकी अभयमुद्रासे आप भक्तको आश्वासन दे रहे हैं। करोड़ों सूर्योंके समान भगवान्‌का प्रकाश है। करोड़ों चन्द्रमाओंके समान भगवान्‌के प्रत्येक अंगसे सुधावृष्टि हो रही है। करोड़ों कामदेवोंके दर्पको चूर्ण करनेवाला भगवान्‌का सौन्दर्य है। भगवान्‌के नेत्र कमलके समान अत्यन्त सुन्दर और विशाल हैं। चन्द्रबिम्बकी शोभाको मन्द करनेवाला भगवान्‌का मुखकमल है। भगवान्‌के कानोंमें कुण्डल, गलेमें रत्नहार एवं वनमाला तथा वक्षःस्थलपर लक्ष्मीजीकी मूर्ति और विप्रपदचिह्न हैं। कौस्तुभमणि गलेमें सुशोभित हो रही है। भगवान्‌के अधर और मोतियोंकी-सी दन्तपंक्ति अत्यन्त शोभित है। मस्तकपर

अति मनोहर मुकुट है। स्कन्धपर चैतन्य ब्रह्मसूत्र विराजित है। देवता, सिद्ध, गन्धर्व, श्रेष्ठ मुनि, नाग और यक्ष भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं। भाग्यवान् पार्षद चँवर, पंखे और छत्र आदिसे भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं। पवित्रात्मा पुण्डरीकने भगवान्‌के इस अचिन्त्य सुन्दर दिव्य स्वरूपको देखकर अत्यन्त प्रेमविह्वल और आनन्दपूर्ण चित्तसे दोनों हाथ जोड़ लिये और उनके चरणोंमें गिरकर स्तुति करना आरम्भ किया।

विविध भाँतिसे भगवान्‌की स्तुति करते-करते पुण्डरीककी वाणी बन्द हो गयी और एक दृष्टिसे वह भगवान्‌के मुखारविन्दकी मधुर शोभाको अतृप्त नयनोंसे देखने लगे, मानो नेत्रोंके द्वारा रूपामृतको हृदयसरोवरमें ढाल रहे हैं। पर वह किसी तरह भरता ही नहीं। प्रेममुग्ध भक्तकी इस पवित्र और अचिन्त्य दशाको देखकर उसकी समाधिको भंग करते हुए भगवान् गम्भीर स्वरसे बोले—

प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पुण्डरीक महामते।
वरं वृणीष्व दास्यामि यत्ते मनसि वर्तते॥

'हे महामते वत्स पुण्डरीक! मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। जो मनमें आवे सो माँग लो।'

पुण्डरीकजी वास्तवमें ही महामति थे। उन्होंने हर्ष-गद्‌गद स्वरसे कहा—'भगवन्! कहाँ मुझ-सरीखा अत्यन्त दुर्बुद्धि प्राणी और कहाँ आप-सदृश सर्वज्ञ, परम सुहृद् स्वामी। आपके दुर्लभ दर्शनोंके बाद और क्या वस्तु शेष रह जाती है, यह मेरी समझमें नहीं आता। फिर भी आप माँगनेकी आज्ञा करते हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि भगवन्! मेरे लिये जिसमें कल्याण हो, आप मेरे प्रति वही आज्ञा कीजिये।'

भगवान्‌ने चरणोंमें पड़े हुए प्रेमाश्रुओंसे चरणोंको धोते हुए महाभाग पुण्डरीकको उठाकर हृदयसे लगा लिया और बोले, हे सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो। वत्स! तुम मेरे साथ चलो और नित्यात्मा एवं जगत्‌के उपकारी होकर सदा-सर्वदा मेरी लीलामें मेरे साथ रहो।

भक्तवत्सल भगवान्‌के प्रीतिपूर्वक इतना कहते ही समस्त दिव्य लोकोंमें दुन्दुभी बजने लगी। आकाशसे पुष्पोंकी वृष्टि होने लगी। ब्रह्मा आदि देवता 'साधु-साधु' की ध्वनि करते हुए भगवान् और भक्तकी महिमा गाने लगे एवं सिद्ध, गन्धर्व और किन्नर आनन्दमें उन्मत्त होकर नाचने-गाने लगे। तदनन्तर समस्त लोकोंके नमस्कारको ग्रहण करते हुए देवदेव जगत्पति भगवान् अपने प्यारे भक्त पुण्डरीकको साथ लेकर गरुड़पर सवार हुए और देखते-ही-देखते अन्तर्धान हो गये।

पितामह भीष्मने उपर्युक्त भक्तगाथा धर्मराज युधिष्ठिरको सुनाकर उनसे कहा कि 'हे राजन्! तुम भी भगवान्‌की भक्तिसे प्रसन्न होकर अपने चित्त और प्राणोंको भक्तोंकी सेवामें लगा दो और विधिपूर्वक पूजन करके पुरुषोत्तमकी सेवा करो। पुण्य और पाप दोनोंको हरनेवाली भगवान्‌की मनोहर कथा सुनो और जिस किसी प्रकारसे भी भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो—विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न हों, वही करो। स्मरण रखो—जो मनुष्य भगवान्‌से विमुख हैं, वे सैकड़ों अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ करनेपर भी भगवान्‌को नहीं पा सकते; परंतु भगवान्‌के प्रेमी भक्तजन 'हरि' इन दो अक्षरोंका उच्चारण करके ही मोक्षके लिये कमर कसकर तैयार हो जाते हैं। यह निश्चय समझो—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

'जिनके हृदयमें इन्दीवरश्याम भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, लाभ और विजय उन्हींके लिये है। उनकी पराजय कहाँ है?'

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त चोलराज और ब्राह्मण विष्णुदास

'प्रचुर धनसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञ-दानादिसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। भगवान्‌की प्रसन्नतामें तो भक्ति ही प्रधान कारण है।'

(चोलराज)

कान्तिपुरमें चोल नामक चक्रवर्ती नरेश राज्य करते थे। उन्हींके नामपर सारे देशका नाम चोल पड़ गया था। उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य दुःखी, पापी और रोगी नहीं था। राजा बहुत दान, पुण्य और यज्ञ किया करते थे, धन-सम्पत्तिका कोई पार न था। राजा भगवान्‌के भक्त थे। नित्य भगवान्‌की मूर्तिका बड़े प्रेमसे पूजन किया करते थे। सब कुछ होनेपर भी राजाको अपने धनका कुछ घमण्ड था, राजा समझते थे कि मैं अपने प्रचुर धनसे दान-पूजन करके भगवान्‌को जितना प्रसन्न कर सकता हूँ, उतना दूसरा कोई नहीं कर सकता। धनके गर्वने राजाके इस विवेकपर पर्दा डाल दिया था कि 'भगवान् धनके भूखे नहीं हैं, वे केवल प्रेम चाहते हैं; उनके लिये राजा-रंक दोनों बराबर हैं।' धनवान् लोग वास्तवमें इस बातको बहुत कम ही समझा करते हैं। स्वर्णमें कलियुगका निवास होनेसे यदि लगातार सत्संग न हो तो धनियोंका सन्मार्गपर स्थित रहना बहुत ही कठिन हो जाता है।

उसी कान्तिपुरमें एक विष्णुदास नामके दरिद्र ब्राह्मण रहते थे। ब्राह्मण बड़े ही दीन थे, पर थे बड़े विद्वान् और भगवान्‌के अनन्यभक्त। वे इस बातको जानते थे कि भगवान् भक्तिसे अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पको भी बड़े प्रेमसे ग्रहण

करते हैं। समुद्रतटपर भगवान्‌के मन्दिरमें राजा और विष्णुदास ब्राह्मण दोनों ही भगवान्‌की पूजा करने जाया करते। एक दिन चोलराज अनेक प्रकारके बहुमूल्य मोतियों, रत्नों तथा विविध भाँतिके सोनेके फूलोंसे विधिवत् भगवान्‌की पूजा कर दण्डवत्-प्रणाम करनेके अनन्तर मन्दिरमें बैठे थे। इतनेमें ही भक्त ब्राह्मण विष्णुदास एक हाथमें जलका लोटा और दूसरेमें तुलसी और फूलोंसे भरी एक छोटी-सी डलिया लिये वहाँ पहुँचे। विप्रर्षि विष्णुदास भक्तिमें विभोर थे, उन्होंने यह नहीं देखा कि वहाँ कौन बैठा है। निःस्पृह भगवद्भक्तको राजाकी ओर देखनेकी आवश्यकता भी नहीं थी। विष्णुदासने आकर डलिया एक तरफ रख दी और विष्णुसूक्तका पाठ करके भक्तिभावसे भगवान्‌को स्नान कराया, राजाके चढ़ाये हुए सारे वस्त्रालंकार जलसे भीग गये; तदनन्तर ब्राह्मणने फूल-पत्तोंसे भगवान्‌की पूजा की और वह भगवान्‌को धूप देने लगे। ब्राह्मणके छदामके तुलसीपत्रोंसे अपने रत्नमुक्ताओंको ढका देखकर राजाको क्रोध आ गया। राजाने ब्राह्मणसे कहा, 'विष्णुदास! मेरी समझसे तुम बड़े मूर्ख हो। तुम्हें भक्तिका कुछ भी पता नहीं है; मैंने मणि-मुक्ताओं और स्वर्णपुष्पोंसे भगवान्‌को कैसा सुन्दर सजाया था, तुमने क्यों सब बिगाड़ दिया? तुममें भक्ति होती तो इतनी सुन्दर शोभाको इन पत्तोंसे ढकते?'

राजाकी बात सुनकर विष्णुदासको भी गुस्सा आ गया। विष्णुदास बोले, 'तुम खूब भक्ति जानते हो; बतलाओ तो सही, तुमने अबतक कौन-सी भक्ति की है? राज्यके घमण्डमें चूर हो रहे हो! भगवान्‌को तुम्हारे मणि-मुक्ताओंसे मोह

थोड़ा ही है। जिसके पास जो कुछ होता है, वह उसीसे भगवान्‌को पूजता है। असलमें तो भगवान्‌की पूजाके लिये शुद्ध हृदय चाहिये। भगवान् यदि धनसे ही प्रसन्न होते तो बेचारे गरीबोंका तो कोई ठिकाना ही नहीं था। गरीब बेचारोंको तो भगवान्‌का ही सहारा है, भगवान् भी यदि धनियोंके धनपर मन चलाने लगे तो फिर गरीबोंको कहीं कोई रहने ही न दे। भगवान् गरीबोंकी सुनते आये हैं। इसीसे तो लोग गरीबोंको सतानेमें कुछ डरते हैं।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर राजाने कहा—'कंगाल ब्राह्मण! तुझे भक्तिका बड़ा गर्व मालूम होता है; तू निर्धन और दरिद्र है, तेरी भक्तिकी कीमत ही क्या है? तूने आजतक कौन-सा दान-पुण्य किया है या कितने मन्दिर बनवाये हैं? तेरी धन-दानरहित भक्तिमें क्या रखा है? कुछ भी न करके तू सिर्फ एक भक्तिके बलसे इतना बक रहा है! अब देखूँगा, हम दोनोंमें किसको पहले भगवान्‌के दर्शन होते हैं? मैं भी उपाय करता हूँ और तू भी कर। जिसको पहले भगवान्‌का साक्षात्कार हो उसीकी भक्ति अच्छी समझी जायगी।' राजाने सोचा कि अपार धनसे यज्ञ करके भगवान्‌को तुरंत प्रसन्न कर लेना कौन-सी बड़ी बात है।

आजकलका-सा समय होता तो पहले तो ऐसे राजाका ही मिलना कठिन होता और यदि कहीं कोई मिल जाता तो ब्राह्मणपर राजद्रोहका मुकद्दमा तो अवश्य ही चलाया जाता। अस्तु!

दोनों वहाँसे चले, राजाने तो अपने महलमें आते ही मुद्‌गल ऋषिको बुलाया और उनके आचार्यत्वमें विशाल विष्णुयज्ञ

आरम्भ कर दिया। गरीब विष्णुदासके पास यज्ञ करनेको तो धन था नहीं, उन्होंने घर आकर कार्तिक और माघके व्रतोंका आचरण, तुलसीवन-सेवन, भगवान्‌के द्वादशाक्षर (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) मन्त्रका जप, एकादशीव्रत और नित्य-नियमपूर्वक षोडशोपचारसे भगवान्‌की भक्तिपूर्वक पूजा करना आरम्भ किया। इसके सिवा ब्राह्मणने जाते-आते, खाते-पीते, सोते-जागते सब समय भगवान्‌का नामस्मरण करते हुए सर्वत्र समानभावसे सर्वभूतस्थ भगवान्‌के दर्शन करनेका अभ्यास किया। इन व्रतोंके पालन करनेके अतिरिक्त वे और कोई काम ही न करते, इससे किसी पापकी तो सम्भावना ही न रही। यों दोनोंको साधन करते-करते बहुत काल बीत गया, दोनोंकी इन्द्रियाँ और उनके सारे कार्य भगवान्‌के निमित्त होने लगे।

ब्राह्मण विष्णुदास एक वक्त रसोई बनाकर खाया करते और रात-दिन अपने साधनमें लगे रहते थे। एक दिन उन्होंने प्रातःकालका नित्यकर्म समाप्त करके रोटियाँ बनाकर रखी ही थीं कि अकस्मात् रोटियाँ वहाँसे उड़ गयीं। ब्राह्मण भूखे तो बहुत थे, पर दुबारा रोटी बनानेमें साधनका समय खर्च करना अनुचित समझकर वे उस दिन भूखे ही रह गये। दूसरे दिन रोटी बनाकर ब्राह्मण भगवान्‌को भोग लगाने गये, आकर देखते हैं तो रोटियाँ नहीं हैं, इस प्रकार ब्राह्मणकी रोटियाँ चोरी जाते सात दिन हो गये। ब्राह्मण चिन्ता करने लगे कि कौन रोज रोटियाँ चुराकर ले जाता है। यहाँ तो सभी ऋषि-मुनि रहते हैं। ऐसा पवित्र स्थान छोड़ना भी ठीक नहीं। इधर दुबारा रसोई बनानेसे सन्ध्याके देवपूजनमें बाधा आती है। नित्य उपवास करके भी कितने दिन रहा जा

सकेगा? यों संकल्प-विकल्प करके अन्तमें ब्राह्मणने यह निश्चय किया कि आज विशेष ध्यान रखूँगा। विष्णुदास रसोई बनाकर एक तरफ छिप गये, उन्होंने देखा कि एक चाण्डाल रोटी चुरा रहा है। चाण्डाल—

क्षुत्क्षामं दीनवदनमस्थिचर्मावशेषितम्।

—भूखके मारे व्याकुल हो रहा था, उसके चेहरेपर दीनता छा रही थी, शरीर केवल चमड़ीसे ढका हुआ हड्डियोंका ढाँचामात्र था। इस दशामें—

तमालोक्य द्विजग्र्योऽभूत् कृपयान्वितमानसः।

चाण्डालको देखकर ब्राह्मणके हृदयमें दया उमड़ आयी और सर्वत्र हरिको देखनेवाले विष्णुदास प्रकट होकर कहने लगे—'ठहरो, ठहरो, रूखा अन्न कैसे खाओगे? देखो, घी देता हूँ, इससे रोटियाँ चुपड़कर खाओ।' ब्राह्मणको देखकर चाण्डाल भयभीत होकर भागा। पीछे-पीछे ब्राह्मण 'घी ले लो, घी ले लो' कहते हुए दौड़े, थोड़ी दूर जाते ही थका-हारा चाण्डाल मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा। द्विजोत्तम विष्णुदास भय और भूखसे मूर्छित उस चाण्डालको जमीनपर पड़ा देखकर कृपावशतः अपने दुपट्टेसे उसे हवा करने लगे। इतनेमें विष्णुदास क्या देखते हैं कि चाण्डालके शरीरमेंसे साक्षात् शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी नारायण प्रकट हो गये हैं। विष्णुदास प्रेममें इतने पागल हो गये कि उन्हें उस समय प्रणाम या वन्दन करना—कुछ भी नहीं सूझ पड़ा, वे चकित और प्रफुल्लित नेत्रोंसे प्रसन्न वदन होकर केवल उस छबिको देखनेमें ही मग्न हो गये।

तदनन्तर वहाँ इन्द्रादि समस्त देवता और सैकड़ों ऋषि-

मुनि आ गये; सैकड़ों विमानोंसे वह स्थान छा गया, गन्धर्वोंने भगवत्-गुणगान आरम्भ कर दिया। भगवान् विष्णुने अपने सात्त्विक भक्त विष्णुदासका प्रेमसे आलिंगन कर उसे विमानमें बैठाया। भगवान् और भक्तका मिलन बड़ा ही मधुर था। विमान आकाशमार्गसे उड़ने लगा। यज्ञदीक्षित चोलराजने देखा कि दरिद्र ब्राह्मण विष्णुदास केवल एक भक्तिके प्रतापसे उससे पहले भगवान्का साक्षात्कार कर वैकुण्ठको सिधार रहा है। चोलराजका समस्त धन-गर्व आज गल गया। राजाके मनमें धनसे सम्पन्न होनेवाले कार्यकी जो कुछ महत्ता थी, वह आज नष्ट हो गयी। उसके लिये यह एक बड़ा प्रतिबन्धक था। राजाने धनको धिक्कारते हुए भक्तिकी सराहना की और अपने गुरु मुद्गल ऋषिसे कहा, 'मैं जिससे होड़कर यज्ञ, दान आदि कर्म कर रहा था, वह ब्राह्मण विष्णुदास तो आज विष्णुरूप प्राप्तकर वैकुण्ठको जा रहा है। मैं जो यज्ञदीक्षित होकर विष्णुकी प्राप्तिके लिये अग्निमें होम करता हूँ और अनेक प्रकारसे दान-पुण्य करता हूँ, उसपर भगवान् अभीतक प्रसन्न नहीं हुए। मैं आज समझ गया कि प्रचुर धनसे सम्पन्न होनेवाले यज्ञ-दानादिसे भगवान् प्रसन्न नहीं होते। भगवान्की प्रसन्नता और उनके साक्षात्कारमें तो भक्ति प्रधान कारण है।

चोलराजके कोई पुत्र नहीं था, इससे उन्होंने अपने भानजेको राजसिंहासनपर बैठा दिया और स्वयं यज्ञभूमिमें आकर यज्ञकुण्डके पास खड़े हो उच्च स्वरसे भगवान्को सम्बोधन करके कहा, 'हे भगवन्! मन, वाणी और शरीरद्वारा होनेवाली अविचल भक्ति मुझे दीजिये।'

यह कहकर राजा सबके सामने यज्ञकुण्डमें कूद पड़ा। राजाने जीवनभर भगवद्भक्तिसहित सत्कार्य ही किये थे, विष्णुयागका फल था ही। धन-गर्वका एक प्रतिबन्धक बाधक था, उसके नाश होते ही राजा पूर्ण अधिकारी हो गया। राजाके यज्ञकुण्डमें कूदते ही भक्तवत्सल भगवान् विष्णु यज्ञाग्निसे आविर्भूत हो गये और राजाको छातीसे लगाकर उसे विमानपर बैठाया और देवताओंसे घिरकर राजाको अपने साथ वैकुण्ठमें ले गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

ब्राह्मण देवमाली

लुब्धा व्यसनिनोऽज्ञाश्च न यजन्ति जगत्पतिम्।
अजरामरवन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः॥
तडिल्लोलश्रिया मत्ता वृथाहंकारदूषिताः।
न यजन्ति जगन्नाथं सर्वश्रेयोविधायकम्॥
कर्मणा मनसा वाचा यो यजेद् भक्तितो हरिम्।
स याति परमस्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम्॥

(बृहन्नारदीय पु०, ३३)

'विषयोंके लोभी, व्यसनी और अज्ञानी मनुष्य ही जगत्पति श्रीहरिकी अर्चना नहीं करते। वे मूढ़ नरकीट समझते हैं कि हम सदा अजर-अमर रहेंगे। वृथा अहंकारसे दूषित मनुष्य ही बिजलीकी चमकके समान क्षणस्थायी ऐश्वर्यके मदमें मतवाले होकर सर्व-कल्याणप्रद जगन्नाथ श्रीहरिकी पूजा नहीं करते। जो मनुष्य शरीर, मन, वाणीसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी पूजा करता है, वह सब लोकोंसे उत्तमोत्तम परमधामको प्राप्त करता है।'

रैवत देशमें देवमाली नामक एक ब्राह्मण निवास करता था। वह वेद-वेदांगका ज्ञाता, सब जीवोंके प्रति दयालु और भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनेवाला था। परन्तु घरमें तथा धनमें उसकी बड़ी आसक्ति थी। इस आसक्तिके वश होकर वह धनकी कामनासे रसादिक विक्रय करता था तथा चाण्डाल आदिसे भी प्रतिग्रह ले लेता था। वह अपने तप, व्रत और धर्मको भी धनके लिये बेच दिया करता था। कुछ समय बाद उसके यज्ञमाली और सुमाली नामक दो सुन्दर पुत्र

उत्पन्न हुए। पुत्रोंके बड़े होनेपर देवमाली अत्यन्त स्नेहके साथ उन्हें भी धन कमानेके भाँति-भाँतिके उपाय बतलाने लगा। इसी उधेड़बुनमें जीवन बीतते-बीतते बुढ़ापा आ गया। तब एक दिन उसने नाना उपायोंसे कमाये हुए धनको गिनना शुरू किया। करोड़ों सोनेकी मुहरें गिनकर वह मन-ही-मन अत्यन्त आनन्दित होते हुए बड़े अचरजके साथ कहने लगा कि 'ओहो! नाना प्रकारके अच्छे-बुरे उपायोंसे मैंने इतना धन इकट्ठा कर लिया, तब भी मेरी धनकी तृष्णा अभीतक शान्त नहीं हुई। आज भी मैं उस तृष्णाके वशमें होकर घरमें सोनेका पहाड़ देखना चाहता हूँ। इतना धन होनेपर भी तृष्णाके कारण मेरे मनमें क्षणभरके लिये शान्ति नहीं है। मैं रात-दिन जला करता हूँ। बाहरसे किसीको मुझमें कोई कष्ट नहीं दीखता, परन्तु मैं रात-दिन अपनेको कष्टों और दुःखोंसे घिरा हुआ देखता हूँ। मैं अब समझा। यह धनतृष्णा ही मेरे समस्त क्लेशोंका कारण है। जिसको धनकी तृष्णा है, वह सब कुछ पा जानेपर भी और कुछ पानेके लिये सदा ललचाता रहता है। बुढ़ापेमें मनुष्यके आँख, कान, दाँत और केश सभी जीर्ण हो जाते हैं; परन्तु यह धनकी लालसा तो उस समय और भी तरुण दिखायी देती है। इसीसे आज बुढ़ापेके कारण मेरी सारी इन्द्रियोंका बल नष्ट हो जानेपर भी मैं धनकी लालसाको और भी बढ़ी हुई देखता हूँ। जिसको धनकी लालसा लगी है, वह बुद्धिमान् होते हुए भी मूढ़ है, शान्त होनेपर भी क्रोधी है और विद्वान् होनेपर भी सबके सामने मूर्ख बनता है। धनकी कामना मनुष्यके लिये अजेय शत्रुके समान है। इसीके कारण पाप-तापकी प्राप्ति

और बन्धुत्वका विच्छेद होता है। बल, तेज, यश, विद्या, शूरता, वृद्धता, कुलीनता और मान—सभीको यह धनकी तृष्णा तुरन्त हर लेती है। जो धनकी लालसामें फँसे हैं, उनका हृदय निरन्तर शोकसे व्याकुल और महान् मोहसे ढका रहता है। धनका लोभी किसी भी पापको नहीं समझता; अपमान, क्लेश—सब कुछ सहकर भी वह धनके लिये पापपूर्ण प्रयत्न करता रहता है। हा! मैंने अपनी सारी उम्र धनकी लालसामें किस तरह खो दी। मैंने न मालूम कितना पाप बटोरा है! अब बुढ़ापा आ गया है, शरीर जीर्ण हो गया है; इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होने लगी है, अब भी क्या मैं नहीं चेतूँगा?' यों विचार करते-करते पश्चात्तापसे ब्राह्मणका हृदय भर गया; वह अपनी करनीको याद करके पछताने लगा और श्रीभगवान्से निस्तारके लिये कातर कण्ठ एवं करुण स्वरसे प्रार्थना करने लगा।

पश्चात्तापकी आगसे पापोंका प्रायश्चित्त होने लगा और भगवत्स्मरण एवं भगवत्प्रार्थनासे आध्यात्मिक बलकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार करते-करते कुछ समय बाद एक दिन ब्राह्मणने निश्चय किया; अब शेष जीवन भगवद्भजनमें ही लगाना है। भगवान्ने गीतामें प्रतिज्ञा करके कहा है कि 'महान् पापी भी यदि (पापोंको छोड़कर) शेष जीवन मेरे भजनमें लगानेका भलीभाँति निश्चय करके अनन्यभावसे मुझको भजता है तो वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वत (नित्य) परम शान्तिको पाता है। हे अर्जुन! तू सत्य जान कि मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता।' इस सिद्धान्तके अनुसार देवमालीने भी भगवान्के भजनमें लगनेका निश्चय

कर सबसे पहले धनके चार भाग किये। अपना कमाया हुआ होनेके कारण दो भाग तो अपने लिये रख लिये और शेष दो भाग दोनों पुत्रोंको बाँट दिये। अपने लिये रखे हुए धनसे उसने मन्दिर, तालाब, कुएँ, धर्मशाला आदि बनवाये, स्थान-स्थानपर वृक्ष लगाये और गंगातीरपर अन्नदानकी व्यवस्था की। इस प्रकार शीघ्र ही अपनी प्रचुर धनराशिको सत्कार्यमें लगाकर वह तपस्याके लिये श्रीनर-नारायणकी लीलाभूमि बदरिकाश्रमको चला गया।

बदरिकाश्रमके महान् वनमें देवमालीने मुनियोंका एक सुन्दर आश्रम देखा। आश्रमके चारों ओर पुष्प और फलोंसे सुशोभित वृक्षोंकी कतार खड़ी थी। शास्त्रचिन्तनमें निमग्न, भगवत्सेवा-परायण वृद्ध-मुनिगण परब्रह्म भगवान्की वैदिक स्तुतियोंसे आश्रमको पवित्र कर रहे थे। देवमालीने देखा, मुनिमण्डलीके बीचमें एक शान्तमूर्ति, राग-द्वेषादिरहित और शमादि गुणोंसे युक्त तेजःपुंज महात्मा बैठे हुए भगवान्की स्तुति गा रहे हैं। उनको देखकर देवमालीने महात्माके चरणोंमें प्रणाम किया। महात्मा मुनिका नाम जानन्ति था, वे बड़े ही तपस्वी थे। केवल सूखे पत्ते खाकर रहते थे। देवमालीको देखकर मुनिवर जानन्तिने उसको अपने पास बैठाया और कन्दमूल-फलादिके द्वारा नारायणबुद्धिसे उसका अतिथि-सत्कार किया। तदनन्तर देवमालीने अपने जीवनका सारा इतिहास संक्षेपमें सुनाकर बड़े ही नम्र शब्दोंमें मुनिवरसे कहा—'भगवन्! आज मेरे सारे पाप नष्ट हो गये, आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया। हे महाभाग! अब मुझे ज्ञान-दान करके मेरा उद्धार कीजिये।' देवमालीके वचन सुनकर मुनिसत्तम जानन्तिने हँसते हुए बड़े

ही स्नेहके साथ कहा, 'हे ब्राह्मण! मैं तुम्हें उद्धारका उपाय बतलाता हूँ, ध्यान देकर सुनो और तदनुसार करो। यदि तुम मेरे कहे अनुसार करोगे तो अवश्य ही तुम्हें दुर्लभ परब्रह्मपदकी प्राप्ति होगी।'

नित्य-निरन्तर परम प्रभु भगवान् नारायण विष्णुका स्मरण और भजन करो। किसीके दोषोंका वर्णन और चुगली कभी न करो। सदा परोपकारमें लगे रहो। श्रीहरिकी पूजाके परायण हो जाओ, मूर्खोंका संग छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर और मदको त्यागकर सब प्राणियोंको अपने आत्माके समान समझो। कभी किसीको कठोर वचन मत कहो, किसीके साथ निर्दयताका व्यवहार मत करो, डाह और परनिन्दा कभी न करो। दम्भ और अहंकारका त्याग करके, सब भूतोंके प्रति दया करो और सत्पुरुषोंकी सेवा करो, पापियोंको पापोंसे छुड़ानेका प्रयत्न करो, उन्हें धर्मका अनुभूत सच्चा मार्ग बतलाओ; प्रतिदिन अतिथियोंकी आत्मवत् सेवा करो। पत्र, पुष्प, फल, माला इत्यादिके द्वारा निष्कामभावसे जगन्नाथ नारायणकी पूजा करो। देवता, ऋषि और पितृगणोंका यथाविधि तर्पण और अग्निकी यथायोग्य सेवा करो। समाहितचित्तसे भगवान्‌के मन्दिरका सम्मार्जन, लेपन, भग्न मन्दिरोंका जीर्णोद्धार, मन्दिरमें दीपदान आदि करो। कन्दमूल-फल, प्रदक्षिणा, नमस्कार और स्तोत्र-पाठद्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा, पुराणश्रवण, पुराणपाठ और प्रतिदिन वेदान्तका अध्ययन करो। इन उपायोंके करनेसे शीघ्र ही अत्युत्तम परम ज्ञानकी प्राप्ति होगी, जिससे तुम्हारे दुःखोंका और पापोंका आत्यन्तिक नाश हो जायगा।'

गुरुवर मुनि जानन्तिके वचन सुनकर उनके आज्ञानुसार

देवमाली साधनमें लग गया। जब कभी सन्देह होता, तब गुरुसे पूछकर वह अपने सन्देहकी निवृत्ति कर लेता। इस प्रकार साधन करते-करते भगवत्कृपासे देवमालीको भगवान्‌का यथार्थ ज्ञान हो गया और अन्तमें गुरुकी आज्ञासे भगवान् विश्वनाथकी वाराणसीपुरीमें आकर देवमालीने भगवान्‌के परमपदको प्राप्त किया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त

प्राचीन कालकी बात है। पुरुषोत्तमपुरीमें भद्रतनु नामका एक ब्राह्मण रहता था। वह देखनेमें बहुत ही सुन्दर, सदाचारी, प्रिय और मधुर बोलनेवाला था और पवित्र कुलमें उत्पन्न हुआ था। माता-पिता लड़कपनमें ही उसे छोड़कर परलोक सिधार गये थे। कोई संरक्षक और मार्गदर्शक न रहनेसे वह धीरे-धीरे कुसंगतिमें पड़ गया। जवानीके जोशीले खूनमें मनुष्य विवेकहीन हो जाता है; फिर यदि कोई सँभालनेवाला न रहे, पासमें पैसे हों और कुसंगति मिल जाय, तब तो पूरा ही उन्माद हो जाता है। भद्रतनु भी बुरे संगमें पड़कर गिर गया। सत्संग, स्वाध्याय और नित्यकर्मके त्यागसे उसका जीवन सर्वथा विशृंखल हो गया। उसने ब्राह्मणाचार, सत्यभाषण, गुरु तथा अतिथिकी पूजा आदि सभी सत्कर्म छोड़ दिये। धर्मनिन्दा, परधन और परस्त्रीमें अनुराग, जुआ, चोरी और शराब आदि समस्त दोष क्रमशः उसमें आ गये। वह परलोकका और ईश्वरका भय छोड़कर पूरा पाखण्डी बन गया।

शहरसे कुछ ही दूरपर सुमध्या नामकी एक परम सुन्दरी वेश्या रहती थी। बुरे संगमें पड़नेके कारण उसका पतन हो गया था और उसे घृणित वेश्यावृत्ति ग्रहण करनी पड़ी थी, परन्तु उसके मनमें अपनी इस वृत्तिपर बड़ी घृणा थी। मन-ही-मन वह अपनी पतित अवस्थापर सदा पछताया करती और उससे छूटनेका मार्ग ढूँढ़ा करती थी। वह चेष्टा करती, परन्तु परिस्थितिवश सफल न होती। एक बार मनुष्यका पतन हो जानेपर फिर उत्थान होना बड़ा कठिन होता है। भारी भीड़में जो

गिर पड़ता है, वह प्राय: भीड़में कुचला ही जाता है; उठकर खड़ा होनेतकका उसे अवकाश ही नहीं मिलता। कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति सुमध्याकी थी; परन्तु उसने हिम्मत नहीं हारी और सतत चेष्टामें लगी रही। उसके हृदयमें धर्म, परलोक और ईश्वरपर बड़ी श्रद्धा थी। वह एकान्तमें रो-रोकर सरल अन्त:करणसे सदा भगवान्‌से अपने उद्धारके लिये प्रार्थना करती। संसारमें न मालूम ऐसे कितने मनुष्य होंगे, जो बेचारे परिस्थितिमें पड़कर बुरा कर्म कर बैठते हैं, परन्तु जिनका हृदय बहुत अच्छा होता है और जो सदा बुराईसे लड़ते हुए अपनेको उस दशासे निकालनेकी चेष्टा करते रहते हैं, समाज उन्हें बुरा समझकर घृणा करता है; परन्तु कहीं-कहींपर तो घृणा करनेवाले कितने ही मनुष्योंसे उनका हृदय कहीं ऊँचा और पवित्र होता है। अस्तु!

भद्रतनुका सुमध्यापर बड़ा अनुराग था। अवश्य ही उसके अनुरागमें विषयलम्पटताकी ही प्रधानता थी, वह उसके रूपानलका पतंग बन रहा था; परन्तु सुमध्याकी ऐसी बात नहीं थी। उसने जाग्रत् हृदयसे ही जगह-जगहसे घबराकर एक भद्रतनुको अपना तन सौंपा था और वह समय-समयपर भद्रतनुको बड़े प्रेमसे समझा-बुझाकर जुआ, शराब आदि दोषोंके भयानक परिणाम बतलाकर उसे दोषमुक्त करनेकी चेष्टा भी किया करती थी। उसके मनमें ब्राह्मणकुमारके पतनपर बड़ा दु:ख था और यद्यपि सुमध्याके पास आनेसे पहले ही भद्रतनु व्यभिचारपरायण हो चुका था, परन्तु सुमध्या उसके इस पतनमें भी अपनेको ही कारण मानकर हृदयमें जला करती थी। परन्तु पेटका सवाल था और उसे यह भी आशा नहीं होती थी कि मेरे समझानेसे भद्रतनु मान ही लेगा और अन्यत्र कहीं भी मुँह काला करने नहीं जायगा।

इसलिये वह बार-बार मन मसोसकर रह जाती और भद्रतनुको व्यभिचार छोड़नेके लिये कुछ भी नहीं कहती!

आज भद्रतनुके पिताका श्राद्ध है। श्राद्धमें श्रद्धा-भक्ति न होनेपर भी लोकलज्जाके भयसे भद्रतनु श्राद्ध करवा रहा है, परन्तु उसका चित्त सुमध्यामें लगा है। ज्यों-ज्यों विलम्ब होता है त्यों-ही-त्यों उसके चित्तकी चंचलता और अकुलाहट बढ़ती जा रही है। श्राद्धके कार्यसे किसी तरह निपटकर वह सुमध्याके घर पहुँचा। अँधेरी रात थी, पानी बरस रहा था, परन्तु उसे कामवश उस समय कुछ भी नहीं सूझा। सुमध्याके घर पहुँचकर वह कहने लगा—'प्रिये! आज मेरे पिताका श्राद्ध था, इससे मुझे कुछ देर हो गयी; परन्तु मेरा दिल ही जानता है कि मैं इतनी देर किस तरह वहाँ रहा। श्राद्धमें मेरी रत्तीभर भी श्रद्धा नहीं है, न मैं किसी देवता या तीर्थको मानता हूँ; मुँहजले गाँवके लोगोंके डरसे मुझे श्राद्धका आडम्बर करना पड़ा। मेरे तो यज्ञ, योग, जप, तप, कुल, यश, नीति सब कुछ तुम्हीं हो। मैं तुम्हारे शरण हूँ, तुम्हारा बिना मोलका गुलाम हूँ; तुम जो कहो वही करूँगा; परन्तु तुम्हारे बिना एक क्षण भी मुझसे नहीं रहा जाता। प्यारी! तुम्हारे मुखचन्द्रके सामने चन्द्रमा बेचारा क्या चीज है। मुझे न तो किसी तीर्थकी जरूरत है और न किसी देवताकी आवश्यकता। मैं तो तुम्हारे ही प्रेम-तीर्थमें नहाकर स्वर्ग-सुखका उपभोग करूँगा। देवता परलोकमें फल देते हैं परन्तु तुम्हारी कृपासे मुझे तो यहाँ नन्दनवनका आनन्द प्राप्त है, मुझे ग्रहण करो।' कामियोंके प्रलापका यह एक नमूना है।

सुमध्या सुन रही थी और मन-ही-मन भद्रतनुकी मूर्खतापर तरस खा रही थी। उसने सोचा, कैसा मोह है! हाड़-मांसके

थैलेपर कैसी आसक्ति है! कामकी कैसी महिमा है! कामी पुरुषोंका कितना घोर पतन है, जो उन्होंने स्त्रीके दोषपूर्ण शरीरका ही वर्णन करनेमें अपनी विद्या-बुद्धिका दुरुपयोग किया!!!

कुच आमिषकी गाँठ कनकके कलस कहत छबि।
मुख नित कफको धाम, कहत ससिके समान कबि॥
झरत मूत्र अरु धातु, भरी दुरगन्ध ठौर सब।
ताको चम्पक-बेल कहत, रस-रेल ठेल दब॥
यह नारि निहारी निन्दतनु बँहके विषयी बावरे।
याको बढ़ाय वाको बिरद बोले बहुत उतावरे॥

(प्रतापसिंहजी)

अब सुमध्यासे नहीं रहा गया, उसने जोशमें आकर कहा—'रे ब्राह्मण! तुझको धिक्कार है! तुझ-जैसे पुत्रकी अपेक्षा तो तेरे पिताका पुत्रहीन रहना अच्छा था, जो तू आज उनके श्राद्धके दिन वेश्याके रूपपर मोहित होकर नरककुण्डमें कूदने आया है!! तूने शास्त्र पढ़े थे, शास्त्रोंके इन वचनोंको क्या तू भूल गया कि जो मनुष्य श्राद्धके दिन स्त्री-प्रसंग करता है, परलोकमें उसके पितृगणोंको और स्वयं उसको वीर्य भक्षण करना पड़ता है।'* मेरे शरीरमें ऐसी कौन-सी सुन्दर और पवित्र वस्तु है, जिसपर तू इतना पागल हो रहा है? अरे! विचार तो कर—

कामिनीको अंग अति मलिन महा असुद्ध,
रोम रोम मलिन, मलिन सब द्वार हैं।
हाड़-मांस-मज्जा-मेद चामसों लपेटि राखे,
ठौर ठौर रक्त के भरेई भण्डार हैं॥

---

* दुर्मते मैथुनं यस्तु कुरुते पितृवासरे।
रेतोभोजिन एव स्युः पितरस्तस्य सोऽपि च॥

मूत्र और पुरीष आँत एकमेक मिलि रहीं,
ऐसे ही उदर माहि बिबिध बिकार हैं।
सुन्दर कहत नारी नखसिख निन्दारूप,
ताहि जो सराहैं सो तो निपट गँवार हैं॥
उदर नरक, अधःद्वारनमें नरक, औ—
कुचनमें नरक, नरक भरी छाती है।
कंठमें नरक, गाल-चिबुक नरक बिम्ब
मुखमें नरक जीभ लारहू चुवाती है॥
नाकमें नरक, आँख-कानमें नरक चुवै,
हाँथ-पाँव, नखसिख, नरक दिखाती है।
सुन्दर कहत, नारी नरकको कुण्ड यह,
नरकमें जाइ परे सोई नरक पाती है॥

(सुन्दरदासजी)

इस प्रकारके घृणित शरीरमें तुझे सौन्दर्यका मिथ्या भ्रम क्यों हो रहा है? क्या मनुष्य-शरीर पाप कमानेके लिये ही मिला है? अधोगतिको पहुँचानेवाले इस घृणित वेश्याके शरीरमें तेरी जितनी आसक्ति है, उतनी यदि भगवान्में होती तो न मालूम अबतक तू किस ऊँची स्थितिपर पहुँच चुका होता। अब भी चेत—

यमदण्डान्तरस्थायि जीवितं च शरीरिणाम्।
तथापि पातकं मूढ कुरुषे निर्भयः सदा॥
जलबुद्बुदवन्मूढ क्षणविध्वंसि जीवनम्॥
किमर्थं शाश्वतधिया करोषि दुरितं सदा॥
ललाटे लिखितं यस्य मृत्युरित्यक्षरद्वयम्।
स कथं कुरुते पापं समस्तक्लेशदायकम्॥

अहो माया महाविष्णोरेका बलवती क्षितौ।
यतः पापमिवामित्रं संचेतुं हर्षितो जनः॥
स्थानं पापाय मा देहि निजदेहे दुराशय।
दहत्याश्रयमेनं हि वीतिहोत्र इव ज्वलन्॥

(पद्मपुराण, क्रियायोग०, १६। ३१—३५)

'अरे मूर्ख! प्राणियोंका जीवन यमराजके दण्डके अधीन है। (चाहे जब मृत्यु आ जाती है) यह जानते हुए भी तू निर्भय होकर क्यों सदा पापोंमें लिप्त हो रहा है? जीवनका क्या ठिकाना है? यह तो जलके बुद्बुदेके समान एक ही क्षणमें ध्वंस हो जायगा। यह जानकर भी तू नित्य ऐसे पाप क्यों कर रहा है? 'मृत्यु' ये दो अक्षर जिसके ललाटपर लिखे हैं, वह प्राणी सब प्रकार क्लेश देनेवाले पाप न जाने क्यों करता है। अहो, संसारमें भगवान् महाविष्णुकी माया बड़ी बलवती है, जिससे लोग पापोंमें लगे रहकर उलटे हर्षित होते हैं। रे दुराशय! तू अपने शरीरमें पापको स्थान मत दे। जैसे अग्नि अपने आश्रितको दग्ध कर डालती है, उसी प्रकार पाप भी अपने आश्रितको भस्म कर डालते हैं।'

'भाई! विचार कर और अपने मनको मुझसे हटाकर भगवान्में लगा दे। जो भगवान्के शरण होकर भगवान्को भजता है, वह भगवान्की दुस्तर मायासे सहजहीमें तर जाता है। भगवान् बड़े दयालु हैं। वे तुझे आश्रय देंगे।' यों कहकर सुमध्या चुप हो गयी। उसका हृदय वैराग्यसे पूर्ण हो गया।

सुमध्याके वचनोंने भद्रतनुके मनपर जादूका काम किया। उसकी आँखें खुल गयीं। वह मन-ही-मन बड़ी गम्भीरतासे अपनी स्थितिपर सोचने लगा—हाय! मैं महामूर्ख हूँ। एक वेश्यामें जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मामें नहीं है। मैंने ब्राह्मणके

शुद्ध वंशमें जन्म लेकर निरन्तर आत्माको पीड़ा पहुँचानेवाले पापोंको ही बटोरा। जब मृत्यु निश्चित है, जब मृत्युके बाद पापका दण्ड भोगनेके लिये यमराजके अधीन होना निश्चित है, तब मुझे क्यों पाप करना चाहिये? हा! मैंने तो जप, तप, हवन, वेदाध्ययन, ब्राह्मणाचार, अतिथिसेवन, गुरुभक्ति, द्विजार्चन, पितृयज्ञादि कर्म या भगवान् श्रीपतिकी उपासना आदि कुछ भी नहीं किया। हा! मुझे उत्तम गति क्योंकर मिलेगी? इस प्रकार चिन्तामें डूबा हुआ भद्रतनु अपनेको सचेत करनेवाली सुमध्याके प्रति पूज्यभावसे प्रणाम करके वहाँसे उठकर चुपचाप चल दिया। सुमध्याने भी उसी क्षणसे वेश्यावृत्ति छोड़कर सदाके लिये श्रीभगवान्‌में मनको तल्लीन कर दिया।

भद्रतनु मन-ही-मन अपनी निन्दा करता हुआ जिज्ञासुभावसे सर्वधर्मज्ञ महात्मा मार्कण्डेयके पास गया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर कहने लगा—'भगवन्! मैं पापियोंका सरदार हूँ, मैंने ब्राह्मणवंशमें जन्म लेकर भी ब्राह्मणाचारका पालन नहीं किया, सदा परहिंसा-परधन और परस्त्रीके सेवनमें ही लगा रहा। मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं, पुण्यकर्म तो कभी भूलकर भी नहीं किया। अब मेरा इस घोर और भीषण दुःखप्रद संसार-सागरसे कैसे निस्तार होगा? हे ब्रह्मविद्श्रेष्ठ! आप कृपामय हैं। मैं आपकी शरण हूँ, मेरा उद्धार कीजिये।'

मार्कण्डेयजीने भद्रतनुकी बात सुनकर बड़े ही स्नेहसे कहा—'हे ब्राह्मण! तुम पाप करनेवाले होकर भी बड़े ही पुण्यात्मा प्रतीत होते हो। पापोंकी स्मृति, पश्चात्ताप, पापोंसे घृणा, पाप छोड़नेका निश्चय और संसार-सागरसे तरनेकी जिज्ञासा बड़े पुण्यबलसे हुआ करती है। संसारमें अधिकांश लोग तो पापको पाप ही नहीं

समझते और हर्षपूर्वक दिन-रात विषय-सेवन तथा पापाचारमें ही लगे रहते हैं। तुम्हारी ऐसी पवित्र बुद्धि हुई है, इससे मालूम होता है भगवान् तुमपर बहुत प्रसन्न हैं। जो पहले पाप करके भी पुनः पापसे निवृत्त होकर भगवद्भजनमें लग जाता है, उसे अच्युतसेवी उत्तम पुरुष ही कहना चाहिये। भगवान् अपने भक्तको पापमें पड़े हुए देखकर उसे बचानेके लिये और सद्गतिकी प्राप्ति करानेके लिये उत्तम बुद्धि दिया करते हैं। तुमने प्रत्येक जन्ममें भगवान्‌की पूजा की है। अतएव शीघ्र ही तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है, परन्तु मैं इस समय अनुष्ठानमें लगा हूँ, इसलिये तुम्हें विशेष बातें नहीं बता सकूँगा। तुम दान्त नामक द्विजराजके पास जाओ, वे सर्वतत्त्वज्ञ हैं। वहीं तुमको इच्छित उपदेश मिलेगा।'

मार्कण्डेयजीके आज्ञानुसार भद्रतनु दान्त मुनिके परम रम्य और पवित्र आश्रमको गया। दान्त मुनि शिष्योंसे घिरे हुए आश्रममें विराजमान थे। भद्रतनुने वहाँ जाकर दान्तके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और स्तवनके बाद दान्त मुनिके पूछनेपर सरल, निःसंकोचभावसे उनसे कहा—'हे महाभाग! मैं जातिका ब्राह्मण हूँ, परन्तु ब्राह्मणके आचारसे सर्वथा वर्जित हूँ। मेरा नाम भद्रतनु है। मैंने जीवनभर पाप-ही-पाप किये हैं। हे ब्रह्मन्! आप सर्वतत्त्वज्ञ हैं, मुझे कृपापूर्वक बतलाइये कि मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका क्या उपाय है?'

दयालु दान्तने स्नेहके साथ भद्रतनुसे कहा—'भाई! तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई, यह भगवान्‌की बड़ी कृपा है। मैं अब तुम्हें वे उपाय बतला रहा हूँ, जिनके करनेसे जीवका संसार-बन्धन सहज ही कट जाता है। उपाय ये हैं—

१—पाखण्डके संसर्गका बिलकुल त्याग करो।

२—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, असत्य और परहिंसाका यत्नपूर्वक त्याग करो।

३—दया, शान्ति और दमयुक्त हो सर्वत्र समदर्शन करते हुए सदा भगवान् श्रीकेशवके शरण होकर उनकी आराधना करो।

४—भक्तियुक्त होकर निरन्तर भगवान् श्रीविष्णुके नामोंको स्मरण करते हुए श्रेष्ठ अहोरात्र-व्रत करो।

५—प्रतिदिन अन्नदान, जलदान और नित्य पंचमहायज्ञ करो।

६—श्रीहरिकी कथा सुनो और उनके द्वादशाक्षरमन्त्रका श्रद्धापूर्वक जप करो। इन साधनोंके द्वारा तुम्हें सर्वोत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होगी, जिसके द्वारा तुम मुक्त हो जाओगे।'

दान्त ऋषिके इन वचनोंको सुनकर भद्रतनुने कहा, 'भगवन्! मैं अति मूढ़ हूँ, मुझे सबका विवरण स्पष्ट करके समझाइये। मैं आपकी कृपासे अवश्य ही परमगतिको प्राप्त करूँगा।' इसपर दान्तने परम प्रसन्न होकर विवरण कहना आरम्भ किया। दान्त बोले—

१—वेद-शास्त्र-सम्मत कर्मका परित्याग कर दूसरा कर्म करनेवाला और अपने आचारको छोड़नेवाला पाखण्डी है एवं वेद-शास्त्र-सम्मत कर्म करनेवाला, अपने आचारोंका पालन करनेवाला और पापकी इच्छा न रखनेवाला मनुष्य सज्जन है।

२—कामिनी, कांचन आदि विषयोंके संग्रहकी इच्छाको काम कहते हैं। अपनी निन्दा सुनकर या मनके प्रतिकूल कार्य होनेपर जो हृदयमें जलन होती है, उसको क्रोध कहते हैं—क्रोध सारे धर्मोंका नाश करनेवाला है। दूसरेके धन आदिको देखकर उसे

पानेकी जो इच्छा होती है, उसका नाम लोभ है। मेरी माता, मेरे पिता, मेरी स्त्री, मेरा पति, मेरा घर—इस प्रकारकी ममताका नाम मोह है। मैं महात्मा हूँ, धनवान् हूँ, मेरे समान पृथ्वीपर कौन है, हृदयके इस प्रकारके भावको मद कहते हैं। लोग सदा मेरी निन्दा करते हैं, इसीलिये मेरे जीवनको धिक्कार है, ऐसे मनके भावको तथा मुझसे दूसरे अधिक धनवान् श्रेष्ठ क्यों हैं, मैं ही सबसे अधिक धनी श्रेष्ठ क्यों न होऊँ—ऐसे भावको मत्सर कहते हैं। सब लोगोंको सुख पहुँचानेवाले हितकर और यथार्थ वचनका नाम सत्य है; जो इसके विपरीत है, वही असत्य है, और दूसरेके ऐश्वर्य, स्त्री, पुत्र, शरीर, धन आदिके नाशकी चिन्ताका नाम हिंसा है। इन सबका त्याग करना चाहिये।

३—दूसरोंके कष्टोंको यत्नपूर्वक दूर करनेकी इच्छाको दया कहते हैं; स्वल्प या जो कुछ भी मिल जाय; उसीमें सन्तुष्ट रहनेका नाम शान्ति है, कुत्सित कार्योंसे चित्त हटानेका नाम दम है, सुख-दुःख तथा मित्र-शत्रु आदिमें समदृष्टि ही समदृष्टि है और भगवान्‌का आश्रय लेकर नैवेद्य, गन्ध-धूपादिद्वारा परम श्रद्धाके साथ श्रीहरिकी पूजा करना ही आराधना है।

४—मध्याह्न और रात्रिके भोजनका त्याग अहोरात्रव्रत है तथा भगवान्‌के साथ अपना एकीकरण करना ही विष्णुस्मरण है।

५—ब्रह्मयज्ञ, नरयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ—ये पंचमहायज्ञ हैं।

६—एवं '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' यही द्वादशाक्षर-मन्त्र है। इसके बाद दान्त ऋषिने भगवान्‌के दुर्लभ चतुर्वर्ग-फलप्रद एक सौ आठ नाम बतलाकर भद्रतनुसे कहा—'तुमको मैंने सब साधन बतला दिये हैं। मेरी बतलायी हुई विधिके अनुसार

भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करनेपर तुम अवश्य ही मोक्षको प्राप्त करोगे। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो!'

भद्रतनु एकान्त स्थानमें जाकर, मन लगाकर, दान्तकी बतलायी हुई विधिके अनुसार, अनन्यचित्त होकर भगवान्‌की उपासना करने लगा। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि यदि महापापी भी सम्यक् निश्चयपूर्वक अनन्यभावसे मुझको भजता है, तो वह साधु ही है और बहुत शीघ्र धर्मात्मा होकर परमपदको प्राप्त होता है। तदनुसार करुणामय श्रीहरि उसकी अनन्यभक्तिसे शीघ्र ही प्रसन्न हो गये और करोड़ों सूर्योंके समान तेजका प्रसार करते हुए सहसा उसके सामने प्रकट हो गये—

आविर्बभूव सहसा कोटिसूर्य इवांशुमान्।

भद्रतनु भगवान् जगदीश्वर श्रीपतिके दर्शन कर मुग्ध हो गया। उसके समस्त पाप-तापोंका सदाके लिये नाश हो गया। भद्रतनुने मस्तकद्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंमें प्रणाम किया और भगवान्‌का स्तवन करते हुए वह कहने लगा—

'हे नाथ! आपके चित्तमें जो दया है, उसका वर्णन कौन कर सकता है? जरा नामका व्याध आपके चरणोंमें बाण मारकर भी परमपदको प्राप्त हो गया। शिशुपाल आपकी निन्दा करके भी मोक्षपदको पा गया। फिर आपके भक्तोंकी तो बात ही क्या है। आप ही ब्रह्मारूपसे जगत्‌का सृजन करते हैं, विष्णुरूपसे पालन करते हैं और अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करते हैं। आपके उसी महाविष्णुरूपको मेरा नमस्कार है। प्रभो! मेरा मन सदा आपमें लगा रहे। जैसे मेघकी गोदमें बिजलीकी भाँति लक्ष्मी सदा आपके श्यामांगमें विराजित रहती हैं, उसी प्रकार मेरा मन आपमें निविष्ट रहे। जिनसे न तो कुछ भी छोटा है और न कुछ भी

बड़ा है; जिनसे यह सारा जगत् व्याप्त है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी महिमाकी सीमा बतलानेमें ब्रह्मा आदि देवगण भी असमर्थ हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धर्मकी स्थापना और पापियोंके विनाशके लिये युग-युगमें प्रादुर्भूत होते हैं, उन आपमें मेरा मन संलग्न रहे। जिन्होंने समस्त जगत्को अपनी मायासे मोहित कर रखा है और जो आप ही मायाके बन्धनको काट देते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। ब्रह्मा, रुद्रादि देवगण जिनके अंशभूत हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जिनकी भक्ति करके जगत्में लोग समस्त विपत्तियोंसे छूटकर परमपदको प्राप्त हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जो धन, स्तुति, दान और तपस्याके बिना केवल एकमात्र भक्तिसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, उन आपमें मेरा मन सदा संलग्न रहे। जो कृपापूर्वक गौ, ब्राह्मण और साधुओंका नित्य हित करते हैं, जो दीन, अनाथ, वृद्ध और रोगियोंका दुःख हरण करते हैं, जो देवता, मनुष्य, नाग और मच्छर आदि जीवोंमें भी समभावसे विराजमान हैं, जो पण्डित, मूर्ख, धनी और दुःखी सबमें समदृष्टि हैं, जिनके लीलापूर्वक रुष्ट होनेपर पर्वत भी तिनकेके समान हो जाता है और जिनके तुष्ट होनेपर एक सामान्य तृण भी पर्वताकार हो जाता है, उन आपमें मेरा मन लगा रहे। जैसे पुण्यात्मा पुरुषोंका मन पुण्यमें, पिताका पुत्रमें और सतीका अपने स्वामीमें लगा रहता है, वैसे ही मेरा मन आपमें लगा रहे और जैसे कामीका मन स्त्रीमें, लोभीका धनमें, भूखेका भोजनमें, प्यासेका जलमें, गर्मीसे व्याकुलका शीतल चन्द्रमाकी छायामें और जाड़ेसे ठिठुरते हुए मनुष्यका सूर्यमें रहता है, वैसे ही मेरा मन केवल आपमें लगा रहे।'

भद्रतनुकी इस स्तुतिमें भगवान्‌के महत्त्व, रहस्य और भक्तकी भावना एवं अनन्य कामनाका बड़ा अच्छा चित्र खींचा गया है। साधकोंको इसपर ध्यान देना चाहिये। अस्तु!

पश्चात् भद्रतनुने फिर कहा—'हे भगवन्! मैंने बुद्धिमान् होकर जो परस्त्रीगमन किया, मोहवश अवध्यका वध किया, अज्ञानमें पड़कर विश्वासघात किया, अखाद्य-भक्षण और अपेय पदार्थका पान किया, लोभवश दूसरेका धन हरण किया, भ्रूणहत्या, व्यभिचार, परनिन्दा, हिंसा आदि पाप किये, शरणागत मनुष्यका अहित किया, दूसरेकी जीविकाका छेदन किया, दूसरेको शर्मिन्दा करके नीचा दिखाया, अयोग्य दान लिया, रास्ते, देवस्थान, गोष्ठ आदिमें मलमूत्रका त्याग किया, हरे वृक्ष काटे, स्नान और भोजनके लिये तैयार मनुष्योंको रोका, पिता-माताके प्रति अभक्ति और अश्रद्धा की, घरपर आनेवाले अतिथिकी पूजा नहीं की, जल पीनेके लिये दौड़ती हुई गायोंको रोक दिया, प्रारम्भ किये हुए व्रतको बीचमें ही छोड़ दिया, पति-पत्नीमें भेद पैदा करा दिया, भगवत्-कथाओंमें विघ्न डाले, मन लगाकर दूसरेकी निन्दा सुनी, जीविका चलानेवालेका तिरस्कार किया, दूसरेके पापोंकी बातें सुनीं, द्विज और माँगनेवालोंको गुस्सेकी नजरसे देखा—आदि-आदि जो हजारों प्रकारके पाप जन्म-जन्मान्तरमें मैंने किये थे, वे सब आज आपके पुण्यदर्शनमात्रसे क्षय हो गये। मैं आज निश्चय ही कृतार्थ हो गया। प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है! नमस्कार है!!'

भद्रतनुकी इस स्तुतिमें पापोंकी बड़ी अच्छी व्याख्या हो गयी। हमलोगोंको सदा इन पापोंसे बचकर भगवान्‌की आराधना करनी चाहिये। साथ ही यह भी निश्चय रखना चाहिये कि भगवान्‌के

दर्शनका इतना महत्त्व है कि उसके होनेमात्रसे ही समस्त पाप कट जाते हैं।

भद्रतनु स्तुति करते भगवान्‌के चारु चरणकमलोंमें पड़ गया। भक्तवत्सल भगवान्‌ने उसे उठाकर हृदयसे लगाया और मनोवांछित वर माँगनेको कहा। भगवान्‌के दर्शनसे ही उसकी मुक्तिकी अभिलाषा मिट गयी और वह केवल भक्तिका भूखा हो गया। भद्रतनुने कहा—

परमेश्वर देवेन्द्र दयालो परमच्युत।
मया सम्प्रति यत्प्राप्तं तत्केन भुवि लभ्यते॥
तथाप्येकं वरं याचे मुरारे तव सन्निधौ।
जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो॥

(पद्मपुराण, क्रियायोगखण्ड)

हे परमेश्वर! हे देवेन्द्र! हे दयालो! हे अच्युत! आज मुझको जो कुछ प्राप्त है, वह जगत्‌में और किसीको प्राप्त है? आपके दर्शनसे बढ़कर और क्या है। तथापि हे मुरारे! मैं आपसे एक वर चाहता हूँ, वह यह है कि हे प्रभो! जन्म-जन्मान्तरमें मेरी आपमें सुदृढ़ भक्ति बनी रहे।

भक्त यही वरदान चाहा करते हैं। मुक्ति नहीं चाहिये; चाहे जितने जन्म हों, आप इस दासको चाहे जहाँ भेजें, परंतु आपकी भक्ति बनी रहे। नाथका हाथ सदा इस सेवकके सिरपर रहे।

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

(रामचरितमानस)

भगवान्‌ने 'तथास्तु' कहकर उसे अपनी सख्यभक्ति प्रदान की और सब प्रकारसे कृतार्थ किया। अन्तमें भद्रतनुके आग्रहसे उसके

गुरु दान्तको भी भगवान्‌ने दुर्लभ दर्शन दिये। तब दान्तने भी कृतार्थ होकर स्तुति करते हुए भगवान्‌से यही प्रार्थना की—

त्वद्दासदासदासानां दासत्वेनापि मां वृणु।

(पद्मपुराण, क्रियायोगखण्ड)

'भगवन्! अपने दासोंके दासके दासके दासरूपमें मुझे ग्रहण कीजिये।'

भक्तिग्राही दयामय देवदेव भगवान्‌ने हँसकर दान्तके मस्तकपर हाथ रख उसे कृतार्थ किया और गुरु-शिष्य दोनोंको आलिंगन प्रदान कर वे सहसा अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर भक्तिमय जीवन बिताकर गुरु दान्त और शिष्य भद्रतनु दोनों अन्तमें भगवान्‌के परमधामको पधारे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त राजा रत्नग्रीव

त्रेतायुगकी कथा है। कांची नामक नगरीमें उस समय राजा रत्नग्रीव राज्य करते थे। रत्नग्रीव थे राजा, परंतु वे अपनेको प्रजाका सेवक मानते थे और भगवान्‌की वस्तु मानकर ही राज्यकी रक्षा तथा भगवान्‌के ही निज जन समझकर प्रजाकी सेवा करते थे। वस्तुतः वे भगवान्‌की सेवा-पूजाके भावसे ही राज्यसंचालन करते थे। उन्हें न राजा होनेका अहंकार था और न वे राज्यकोषसे अपने साधारण खर्चके सिवा एक पैसा भी विलासिता या मौज-शौकमें खर्च करते थे। उनका जीवन मानो मूर्तिमान् धर्म था। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा भी होती है—इस न्यायके अनुसार कांची-राज्यमें सभी लोग धर्मात्मा थे। वर्णाश्रम-धर्मका पूरा पालन श्रद्धापूर्वक किया जाता था। वहाँके ब्राह्मण अपने षट्कर्ममें रत थे। क्षत्रिय समस्त प्राणियोंके हित-साधनमें तत्पर और धर्मयुद्धमें सदा उत्साही थे। वैश्य पर-द्रव्यसे विमुख होकर सदा निर्दोष और न्यायसंगत कृषि-वाणिज्यमें लगे हुए अर्थके द्वारा सबका पालन करते थे। शूद्र अपना कर्तव्य समझकर समाजकी सेवा करते थे। सभी लोग भगवान्‌में भक्ति और परस्त्रीमें मातृभाव रखते थे एवं परायी बुराईसे सदा बचे रहते थे। उनकी जिह्वापर सदा श्रीराम-नाम बसता था। कांचीपुरीमें दया, सत्य, शान्ति और दान आदि उत्तम कार्य सब ओर सदा दिखायी देते थे। कोई भी मनुष्य ऐसा शब्द मुँहसे नहीं बोलता था, जिससे दूसरेको कष्ट हो, उसका अपमान हो या उसके मनमें काम-क्रोधादिका विकार पैदा हो। मतलब यह है कि किसीके मुँहसे घमण्डभरी, दुःखदायिनी और गन्दी वाणी नहीं निकलती

थी। पराये धनमें किसीको कोई लोभ नहीं था और कोई भी मनुष्य पाप नहीं करता था। राजा रत्नग्रीव लोभ छोड़कर प्रजासे केवल छठा हिस्सा कर वसूल करते थे। इसके सिवा प्रजापर कोई टैक्स नहीं था। इस करमेंसे भी अधिकांश द्रव्य वे प्रजाके हितमें ही खर्च कर देते थे। इस प्रकार धर्मपूर्वक प्रजापालन करनेमें उनकी उम्रका बहुत अंश बीत गया, यद्यपि उनका राज्यकार्य भगवत्सेवा ही था। वास्तवमें क्रियाका इतना महत्त्व नहीं है, जितना भावका है। राग-द्वेषरहित निष्कामभावसे की हुई साधारण क्रिया भी राग-द्वेषयुक्त सकामभावसे की हुई महान् पुण्यस्वरूप क्रियासे कहीं अधिक महत्त्व रखती है। जहाँ भाव और क्रिया दोनों उत्तम हों वहाँ तो सोना-सुगन्ध दोनों हैं। इसीलिये राजाने अब अपना शेष जीवन तीर्थसेवन करते हुए उत्तम-से-उत्तम क्रिया—श्रीभगवान्के भजनमें ही लगाना चाहा। इसी उद्देश्यसे उन्होंने एक दिन अपनी पतिव्रता पत्नी विशालाक्षीसे कहा—

'रानी! हमलोगोंकी वृद्धावस्था समीप आ चुकी है। अब हमें किसी महान् तीर्थमें जाकर अपना बाकी जीवन केवल श्रीभगवान्के भजनमें ही बिताना चाहिये। भगवान्के अनुग्रहसे राज्यमें किसी प्रकारका अभाव नहीं है। प्रजाकी सेवा करनेके लिये पुत्र सुयोग्य हो गये हैं। अब मनुष्य-जीवनके परमलाभ भगवत्प्राप्तिके लिये ही हमलोगोंको जी-जानसे लग जाना चाहिये। जो मनुष्य जीवनभर केवल उदर-पोषणमें ही लगा रहता है, भगवान्की पूजा नहीं करता, उसको तो मनुष्यरूपमें बैल ही समझना चाहिये—

यो नरो जन्मपर्यन्तं स्वोदरस्य प्रपूरकः।
न करोति हरेः पूजां स नरो गोवृषः स्मृतः॥

रानीने बड़े हर्षसे पतिके प्रस्तावका समर्थन किया। राजाने

राज्यका समस्त भार पुत्रको सौंपकर तीर्थयात्राकी तैयारी की। भगवान्‌के ध्यानमें लगे हुए राजाको रातके समय नींद आ गयी। नींदमें राजाने देखा, एक महान् तपस्वी ब्राह्मण आये हैं। दूसरे दिन सबेरे राजाने राजसभामें देखा एक जटा-वल्कलधारी दुबले-पतले तपस्वी ब्राह्मण पधारे हैं। राजाने ब्राह्मणको मस्तक नवाकर प्रणाम किया और बड़े हर्षके साथ उनकी पूजा की। भोजन और आराम कर लेनेपर राजाने ब्राह्मणसे कहा—'भगवन्! आपके दर्शनसे मेरे सब पाप दूर हो गये। महापुरुष दीन-पापी मनुष्योंके पाप नष्ट करके उन्हें पवित्र करनेके लिये ही कृपापूर्वक उन लोगोंके घर जाया करते हैं। उन्हें और क्या प्रयोजन है? आप महात्मा हैं, मेरी तीर्थसेवनकी इच्छा है; कृपा करके बतलाइये, मैं किस तीर्थमें जाकर निवास करूँ? किस पुण्यक्षेत्रमें रहकर किनका भजन करनेसे मैं जन्म-मृत्युके चक्रसे छूट सकूँगा?' ब्राह्मणने अयोध्या, हरिद्वार, अवन्ती, कांची, काशी आदि तीर्थोंका माहात्म्य वर्णन करके अन्तमें कहा—'राजन्! आप नीलाचलमें पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाकर भगवान् श्रीरामचन्द्रका भजन कीजिये। वहाँ जानेसे ही आपका कल्याण हो जायेगा।' श्रद्धालु राजाने ब्राह्मणके वचन सुनकर उसीके अनुसार पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जानेका निश्चय कर लिया। तीर्थयात्राकी विधि पूछनेपर ब्राह्मणने कहा—

तीर्थयात्राकी विधि

तीर्थयात्राके लिये श्रद्धापूर्वक मनमें निश्चय करके पहले स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदि पदार्थोंको अनित्य और मायिक जानकर इनमें वैराग्य करे और एकमात्र श्रीहरिको सत्य और नित्य समझकर मनसे उनका स्मरण करता रहे। फिर रामनामका उच्चारण करता हुआ घरसे निकले और एक कोस जाकर वहाँ

तीर्थादिमें विधिपूर्वक स्नान करे और क्षौर करावे। कहते हैं कि तीर्थोंमें मनुष्यके पाप उसके केशोंका आश्रय करके रह जाते हैं, इसीसे मुण्डनकी विधि है। तीर्थयात्री मनुष्य लोभादि त्यागकर दण्ड (लाठी), कमण्डलु (पात्र) और आसन लेकर तीर्थवेशमें चले। जिसके चरण श्रीहरिके क्षेत्रमें उत्साहपूर्वक गमन करते हैं, जिसके हाथ श्रीहरिकी सेवामें लगे हैं, जिसका चित्त भगवान्‌के चिन्तनमें रत है, जो श्रीहरिके ज्ञानको ही 'विद्या', श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले कठोर साधनको ही 'तपस्या' और श्रीहरिके कैंकर्यमें ही 'कीर्ति' मानता है, उसीको तीर्थका सम्यक् फल प्राप्त होता है। '*हरे कृष्ण हरे कृष्ण, भक्तवत्सल हे हरे! जगन्नाथ शरण्य भगवान् विष्णु कृष्ण हरे हरे॥*' आदि नामोंका जीभसे उच्चारण और मनसे निरन्तर श्रीहरिका स्मरण करते हुए बुद्धिमान् पुरुषको पैदल ही तीर्थयात्रा करनी चाहिये। किसी सवारीपर चढ़कर जानेसे तीर्थका फल कम हो जाता है।

तीर्थयात्राकी तैयारी और यात्रा

राजाने ब्राह्मणके वचन सुनकर इसी विधिसे तीर्थयात्रा करनेका मनमें निश्चय करके उनका चरण-वन्दन किया और मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे कहा—'मन्त्रिगण! आपलोग सारे राज्यमें इस बातकी घोषणा कर दें कि राजा तीर्थयात्राको जा रहे हैं। जिनकी इच्छा हो, जो यमदण्डसे मुक्त होकर भगवान्‌को पाना चाहें वे उनके साथ जायँ। माताओंको भी श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये और अपनी सन्तानको उत्साहित करना चाहिये। जिनके पुत्र-पौत्र श्रीहरिके शरणागत नहीं होते, उनको जन्म देनेवाली माताओंको शूकरियोंके दलकी तरह गन्दी चीजें भक्षण करनी पड़ती हैं—

येषां पुत्राश्च पौत्रा वा हरिं न शरणं गताः।
शूकरीयूथवत्तेषां प्रसूतिर्विड्प्रभक्षिका॥

'जिन भगवान्‌के नामोच्चारणमात्रसे उसी समय पापोंका नाश हो जाता है, उन हरिको सर्वांगसे मेरी सारी प्रजाका नमस्कार है।'

मन्त्रियोंने इस राजाज्ञाका प्रचार सारी प्रजामें कर दिया और तदनुसार प्रजामेंसे बहुत-से नर-नारी आनन्द-रसमें डूबे हुए-से अपने उद्धारका निश्चय करके प्रजावत्सल पितातुल्य नरपतिके साथ पुरुषोत्तम क्षेत्रकी ओर चलनेको तैयार हो गये। राजा अपना प्रातःकालीन नित्यक्रिया करके ब्राह्मणदेवको साथ लेकर भगवान्‌को प्राप्त करनेकी तीव्र लालसा और उमगते हुए उत्साहके साथ तीर्थयात्राको निकले। प्रजालोग पीछे-पीछे चले। काम, क्रोध और लोभकी वृत्तियोंसे शून्य राजा भगवान्‌का भजन और ध्यान करते हुए चलने लगे। एक कोस चलकर उन्होंने विधिपूर्वक क्षौर-कर्म कराया और तीर्थयात्री-वेष धारण किया और सब लोग ***'जय माधव, जय भक्तजनप्रिय, जय पुरुषोत्तम, जय माधव'*** इन गोविन्दनामोंका कीर्तन करते हुए चलने लगे। रास्तेमें जहाँ टिकते वहीं भगवान्‌की कथा, भगवान्‌के लीला-गुणोंके सुन्दर पदोंका गायन हुआ करता। दीन-दुःखियोंको यथायोग्य दान दिया जाता। यों यात्रा करते-करते राजा गण्डकी नदीके तीरपर पहुँचे। साथी ब्राह्मणदेवताने गण्डकीका और शालग्रामका माहात्म्य सुनाते हुए कहा कि जिसके मस्तकपर तुलसी हो, हृदयपर सुन्दर शालग्रामशिला हो, मुँहसे रामनामका उच्चारण या कानसे श्रवण हो, वह निश्चय ही संसार-बन्धनसे मुक्त होता है। राजाने अपने समस्त संगियोंसहित गण्डकी-तीर्थमें स्नान-तर्पणादि करके शालग्रामजीकी पूजा की।

गंगासागर-संगमपर भगवद्दर्शन

तदनन्तर चलते-चलते सब गंगासागर-संगमपर पहुँचे। तब राजाने ब्राह्मणसे कहा—'भगवन्! अब नीलाचल कितनी दूर है?' ब्राह्मण बोले—'महाराज! हम नीलपर्वतके घेरेमें ही तो आ गये हैं। क्या तुम यहाँ भगवान्‌की महिमा नहीं देख पाते हो?' राजाने कहा—'भगवन्! मुझको आप यहाँ भगवान्‌के दर्शनका उपाय बताइये। आप जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूँगा।' इसपर ब्राह्मणदेवताने कहा—'जबतक भगवान्‌के दर्शन न हों, तबतक यहीं बैठकर सब लोगोंको भगवान्‌का नाम-कीर्तन करना चाहिये। कीर्तनसे प्रसन्न होकर भगवान् शीघ्र ही दया करेंगे। भक्तवत्सल भगवान् कभी भक्तकी उपेक्षा नहीं कर सकते। अतएव हे राजन्! भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान्‌का नाम-गान करो।'

ब्राह्मणदेवताके आज्ञानुसार सब लोग नाम-कीर्तनमें लग गये। तदनन्तर उपवासव्रती राजाने भगवान्‌से निम्नलिखित स्तुति की—

जय दीनदयाकर प्रभो
जय दुःखापह मंगलाह्वय।
जय भक्तजनार्तिनाशन
कृतवर्ष्मन् जय दुष्टघातक॥
अम्बरीषमथ वीक्ष्य दुःखितं
विप्रशापहतसर्वमंगलम्।
धारयन् निजकरे सुदर्शनं
त्वं ररक्ष जठराधिवासतः॥
दैत्यराजपितृकारितव्यथः
शूलपाशजलवह्निपातनैः।
श्रीनृसिंहतनुधारिणा त्वया
रक्षितः सपदि पश्यतः पितुः॥

ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिमुद्भटं
वारेणेन्द्रमतिदुःखपीडितम् ।
वीक्ष्य साधु करुणार्द्रमानस-
स्त्वं गरुत्मतिकृतारुहक्रियः ॥
त्यक्तपक्षिपतिरात्तचक्रको
वेगकम्प्ययुतमालिकाम्बरः ।
गीयसेऽसुभिरमुष्य नक्रतो
मोचकः सपदि तद्विनाशकः ॥
यत्र यत्र तव सेवकार्दनं
तत्र तत्र बत देहधारिणा ।
पाल्यतेऽत्र भवता त्वया निजः
पापहारिचरितैर्मनोहरैः ॥
दीननाथसुरमौलिहीरकोद्-
धृष्टपादतल भक्तवल्लभ ।
पापकोटिपरिदाहक प्रभो
दर्शयस्व मम पादपंकजम् ॥
पापकृद्यदि जनोऽयमागतो
मानसे तव तथा हि दर्शय ।
तावका वयमघौघनाशनं
विस्मृतं न हि सुरासुरार्चित ॥
ये वदन्ति तव नाम निर्मलं
ते तरन्ति सकलाघसागरम् ।
संस्मृतिर्यदि कृता तदा मया
प्राप्यतां सकलदुःखहारकः ॥

(पद्मपुराण, पाताल० २१। २०—२८)

'हे दीनोंके लिये दयाकी खान प्रभो! आपकी जय हो। हे दुःखका नाश करनेवाले तथा मंगलमय नामवाले! आपकी जय हो। भक्तोंके कष्ट नाश करनेके लिये अवतार लेनेवाले आपकी जय हो। दुष्टोंका वध करके उद्धार करनेवाले आपकी जय हो। भगवन्! ब्राह्मण (दुर्वासा-) के शापसे जिसके मंगल नष्ट हो रहे थे, उस अपने भक्त अम्बरीषको दुःखी देखकर हाथमें सुदर्शन धारण करके आपने गर्भवास (पुनर्जन्म)-से उस अपने भक्तकी रक्षा की थी। दैत्यराज हिरण्यकशिपुने जब अपने पुत्र प्रह्लादको शूलसे मारकर, फाँसीमें लटकाकर, जलमें और आगमें डालकर कष्ट पहुँचाया, तब आपने श्रीनृसिंहावतार धारण करके पिताके देखते-देखते उसकी अविलम्ब रक्षा की। ग्राहके मुखसे जिसका पैर पकड़ा गया है, ऐसे प्रबल गजराजको महान् पीड़ित देखकर दयार्द्र होकर आप गरुड़पर सवार हुए, किंतु उसके पहुँचनेमें देरी देखकर आप गरुड़का त्याग करके सुदर्शनचक्र लिये ऐसे वेगसे दौड़े कि आपके वनमाला और पीताम्बर हिलने लगे और उसी समय ग्राहको मारकर गजराजको उबार लिया, जिसके कारण अब भी लोग प्राणोंके द्वारा आपका यशोगान करते हैं। जहाँ-जहाँ आपके भक्तोंपर भीड़ पड़ती है, वहाँ-वहाँ आप दिव्य विग्रह धारण करके पापहारी मनोहर चरित्रोंके द्वारा भक्तोंकी रक्षा करते हैं। हे दीनानाथ! देवताओंके प्रणाम करते समय उनके मस्तकपर अलंकाररूपमें रहनेवाले हीरोंसे जिनके चरणतल घिस गये हैं, ऐसे हे भक्तवल्लभ! हे करोड़ों पापोंको जला डालनेवाले प्रभो! मुझे अपने चरणकमलोंका दर्शन कराइये। मैं यदि पापी हूँ, तो भी आपके स्मृतिपथमें आ गया हूँ, अतः अपने चरणकमलोंका दर्शन कराइये। क्योंकि हे सुरासुरोंसे पूजित देव! मैं आपका ही

हूँ और मैंने आपके पापराशिका नाश करनेवाले नामको नहीं भुलाया है। जो लोग आपके निर्मल नामका उच्चारण करते हैं, वे समस्त पापसागरसे तर जाते हैं। जब आपने मुझे स्मरण किया ही है, तब कृपा करके अपना सर्व-दुःखहारी दर्शन कराइये।'

इस प्रकार स्तुति और कीर्तन करते हुए और 'हे कृपानाथ! हे पुरुषोत्तम! मुझे अपना स्वरूप दिखलाइये। (**दर्शयस्व कृपानाथ स्वतनुं पुरुषोत्तम।**)' आर्तभावसे यों पुकारते हुए उपवासव्रती राजाके पूरे पाँच दिन बीत गये, तब भगवान्‌ने विचार किया कि 'मेरे नाम-गुण-गानसे राजा पापशून्य हो गया है, अब इसे दर्शन देना चाहिये।' और संन्यासीके वेषमें राजाके सामने भगवान् प्रकट हो गये। हरि-चिन्तनपरायण राजाने '**ॐ नमो विष्णवे**' कहकर नमस्कार, अर्घ्य, पाद्य और आसनादिद्वारा उनकी पूजा करके कहा—'भगवन्! मैं बड़ा ही भाग्यशाली हूँ, जो मुझे आपके दर्शन हुए। अब निश्चय ही मुझे श्रीगोविन्द दर्शन देंगे।'

संन्यासीने कहा—'राजन्! मैं अपने ज्ञानबलसे तीनों कालकी बात जानता हूँ। उसी ज्ञानके बलपर मैं तुमसे कहता हूँ कि कल मध्याह्नके समय तुमको श्रीहरिके दुर्लभ दर्शन प्राप्त होंगे। दर्शन ही नहीं, तुम अपने चार सुहृदों—तुम्हारे मन्त्री, तुम्हारी रानी, तपस्वी ब्राह्मण और तुम्हारे नगरमें रहनेवाला करम्ब नामक साधुचरित्र जुलाहासहित परमपदको प्राप्त कर सकोगे।' इतना कहकर तेजःपुंज संन्यासी अदृश्य हो गये। राजा आश्चर्यचकित होकर देखते रह गये। उन्होंने इधर-उधर बहुत खोज की; परंतु कहीं संन्यासीका पता न लगा। तब तापस ब्राह्मणने कहा—'राजन्! तुम्हारे महान् प्रेमसे आकर्षित होकर भगवान्‌ने ही

संन्यासीरूपमें तुम्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया है। अब कल मध्याह्नके समय हम सबको भगवान् अपने दिव्य-स्वरूपमें दर्शन देंगे।' राजाको तापस ब्राह्मणके इन वचनोंसे जो अभूतपूर्व आनन्द मिला उसकी कोई तुलना नहीं है। ग्रन्थकार कहते हैं—

इतिवाक्यसुधापूरनाशितस्वान्तसंज्वरः ।
हर्षं यमाप स नृपो ब्रह्मापि न हि वेत्ति तम्॥

'तापस ब्राह्मणके वाक्यामृतप्रवाहसे राजाका चित्तज्वर नाश हो गया और उन्हें इतना आनन्द हुआ कि ब्रह्मा भी उसका अनुभव नहीं कर सकते।'

जिसके प्राणधन प्रियतमके दर्शनके लिये प्राण-मन अत्यन्त व्याकुल हों; उसे दर्शनका समय मालूम हो जानेपर निश्चित ऐसा ही होता है। कहते हैं—

महानन्दस्तदा ह्यासीद्राजराजस्य चेतसि।
गायन् हरिं क्षणं तिष्ठन् नृत्यञ्जल्पन् हसन् ब्रुवन्॥
आनन्दं प्राप सुघनं सर्वसन्तापनाशनम्।

उस समय राजाके हृदयमें ऐसा महान् आनन्द हुआ कि वे कभी तो श्रीहरिका नाम-गुण गाते हुए हँसने लगे, कभी खड़े होकर नाचने लगे, कभी लीला सुनाने लगे, कभी नाम-कीर्तन करने लगे। इस प्रकार वे सर्वसन्तापनाशक अत्यन्त घन आनन्दको प्राप्त हो गये। भगवान्के मिलनकी आशाके अमृतानन्दमें ही रात हो गयी। रातको भगवान्की लीलासे राजाको नींद-सी आ गयी। उन्होंने नींदमें देखा—शंख, चक्र, गदा, पद्म और शार्ङ्गधनुष धारण किये हुए भगवान् विष्णु अपने पार्षदों तथा श्रीमहादेवजी आदिके साथ नृत्य कर रहे हैं। प्रातःकाल जगकर राजाने स्वप्नकी सारी बातें तापस ब्राह्मणसे कहीं। ब्राह्मणने हर्षित होकर कहा—'राजन्! मालूम होता है भगवान् तुमको

अपना सारूप्य देना चाहते हैं।' राजाके आनन्दका पार न रहा। सब लोग भगवन्नामका गान करते हुए चले। इतनेमें मध्याह्नकाल हो गया। स्वर्गमें देवता दुन्दुभी बजाने लगे और राजाके मस्तकपर स्वर्गीय पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। इतनेमें ही राजाने देखा करोड़ों सूर्योंके तेजको निष्प्रभ करनेवाला तेजोमय नीलाचल शोभित है, उसके चारों ओर चाँदी और सोनेके शिखर हैं। ब्राह्मणने कहा—'यही नीलगिरि है।' इसके अनन्तर राजाको भगवान्‌के दिव्य दर्शन हुए। राजाने पत्नी और सेवकोंसहित जगत्पतिको प्रणाम करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की और फिर दिव्य शब्दोंमें उनकी स्तुति की। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर राजाको अपना नैवेद्य दिया और कहा—

नैवेद्यभक्षणं त्वं हि शीघ्रं कुरु मनोहरम्।
चतुर्भुजत्वं प्राप्तः सन् गन्तासि परमं पदम्॥

'इस मनोहर नैवेद्यका शीघ्र भोग लगाओ, इससे तुम दुर्लभ चतुर्भुज शरीरको प्राप्त करके परमपदको पहुँच जाओगे।' राजा भगवान्‌के दिये हुए नैवेद्यको पाकर कृतार्थ हो गये। राजाने देखा आकाशमण्डलसे एक विचित्र विमान उतर रहा है। तदनन्तर भगवान्‌की आज्ञासे राजा अपनी पत्नी, सत्य नामक मन्त्री, तापस ब्राह्मण और करम्ब नामक जुलाहेके साथ विमानपर सवार हो गये। सभीको दिव्य चतुर्भुज रूप प्राप्त हो गया। विमान चला। भगवान्‌का विमान भी साथ-साथ चला। देवताओंने दुन्दुभी बजायी। महात्माओंने स्तवन किया। प्रजालोग इस आश्चर्य-घटनाको देखकर राजाकी प्रशंसा करते हुए तीर्थस्नान करके घर लौटे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

रामभक्त राजा सुरथ

'सरकार! अपराध क्षमा हो। हमने नगरके बाहर आज अयोध्यापति महाराज श्रीरामचन्द्रके उस अश्वको जाते देखा है। जो उन्होंने अश्वमेधयज्ञके लिये छोड़ा है। उस चन्दनचर्चित मनोहर अश्वके ललाटपर विजयपत्र बँधा है, जिसमें स्पष्ट शब्दोंमें विजय-घोषणा की गयी है। सरकारकी आज्ञा हो तो उस सुन्दर घोड़ेको पकड़ लिया जाय। सुना है उस यथेच्छ विचरण करनेवाले घोड़ेके पीछे नरश्रेष्ठ अयोध्यानाथ श्रीरामचन्द्रजीकी बहुत बड़ी सेना उनके छोटे भाई शत्रुघ्नकी अध्यक्षतामें उसकी रक्षाके लिये चली आ रही है।'

कुण्डलनगरके धर्मात्मा राजा सुरथके गुप्तचरोंने राजसभामें आकर नम्रतासे ऐसा निवेदन किया। सेवकोंका निवेदन सुनकर राजा सुरथ बोले—

'वीरो! तुमने बहुत ही उत्तम शुभ संवाद सुनाया। अहा! हम धन्य हैं, जो पार्षदोंसहित भगवान् श्रीरामके दर्शन करेंगे। निश्चय ही मैं बड़े-बड़े वीरोंसे घिरे हुए उस यज्ञीय अश्वको पकड़ लूँगा और इस बहाने अपनी चिरकालकी साध सहज ही पूरी करूँगा। भक्तपर अनुग्रह करके जब वे स्वयं यहाँ पधारेंगे, तभी घोड़ेको छोड़ूँगा। देखना, यह उनका दास उन्हींकी शक्तिसे कैसे उनके अश्वको पकड़ता है और कैसे उन्हींके अनुचरोंको समरभूमिमें शिक्षा देता है। जाओ शूरवीरो! बेधड़क घोड़ेको पकड़ लाओ, जरा भी देर या संकोच न करो। मेरी समझसे इसमें हमें परम लाभकी प्राप्ति होगी, क्योंकि इस बहाने हमलोग ब्रह्मादि देवोंके लिये भगवान्‌के जिन चरणकमलोंके दर्शन दुर्लभ हैं, उनके सहज

ही—बड़े समीपसे दर्शन करेंगे। अहा! उन चरणोंको अपने हाथोंसे पकड़-पकड़कर हम पलोटेंगे! जिनके भरोसे मुझे अपने स्वामीके दर्शन होंगे, वे मेरे स्वजन, पुत्र, बन्धु-बान्धव, पशु और वाहन भी धन्य हैं। तुमलोग जल्दी जाओ और तुरन्त उस स्वर्णपत्रसे सुशोभित कामगति मनोहर अश्वको पकड़कर अपनी घुड़सालमें बाँध दो।'

राजाकी स्पष्ट आज्ञा पाकर शूरवीर लोग अपनी-अपनी सवारियोंपर चढ़कर दौड़े और तुरन्त ही घोड़ेको पकड़कर राजाके पास ले आये। राजा घोड़ेको देखकर प्रसन्न हो गये और बड़े-बड़े शूरवीर महाबली सेवकोंको उसकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया।

कुण्डलपुरके ये स्वनामधन्य राजा सुरथ बड़ी ही उच्च श्रेणीके भगवद्भक्त और धार्मिक नरेश थे। उनके राज्यकी उत्तम दशाका वर्णन करते हुए श्रीशेषजी कहते हैं—

न तस्य विषये कश्चित् परदाररतो नरः।
न परद्रव्यनिरतो न कामेषु च लम्पटः।
न जिह्वाभिरनुन्मार्गं कीर्तयेद्रामकीर्तनात्॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

'उनके राज्यमें कोई भी मनुष्य परस्त्री और पराये धनमें आसक्त तथा कामोपभोगमें लम्पट नहीं था और श्रीरामके कीर्तनको छोड़कर कोई भी मनुष्य अपनी जीभसे विपरीत शब्द नहीं निकालता था।'

जब कोई मनुष्य राजाके पास नौकरीके लिये आता, तब राजा उससे पूछते—'भैया! तुम अपने धर्म-कर्मको भलीभाँति जानते हो न? एकपत्नीव्रतका पालन करते हो न? दूसरेके धनपर

तो कभी मन नहीं ललचाते? दूसरोंकी निन्दामें तो तुम्हारा मन नहीं लगता? वेदके विरुद्ध तो तुम कोई आचरण नहीं करते? मेरे पास वही पुरुष रह सकते हैं जो सदाचारी हों और भगवान् श्रीरामका नित्य स्मरण करते हों। जो धर्म-विरुद्ध आचरण करनेवाले पापी लोग हैं, वे तो मेरे राज्यमें निवास भी नहीं कर सकते।'

वस्तुतः उनके राज्यमें एक भी मनुष्य पापी नहीं था। मनसे भी कोई पाप नहीं करता था। आनन्दपूर्ण हृदयसे सदा भगवान् हरिका ध्यान करनेसे सभीका हृदय पापशून्य हो गया था। उनके राज्यमें मरनेवाले सभी लोग मुक्त होते थे। '**तत्पुरस्था नराः सर्वे मृता गच्छन्ति निर्वृतिम्।**' सुरथ राजाके नगरमें यमदूत तो प्रवेश भी नहीं कर सकते थे '**यमानुचरनिर्वेशो नाभवत् सौरथे पुरे**'।

एक समय सुरथ राजाकी भगवद्भक्तिका महत्त्व देखनेके लिये स्वयं यमराज जटाधारी मुनिका वेश धारणकर राजाके पास आये। उन्होंने आकर देखा, राजा सभामें बैठे अपने साथियोंसे धर्म-चर्चा कर रहे हैं, उनके मस्तकपर तुलसीपत्र रखा है और बात-बातमें उनके मुखसे हरिनामका उच्चारण हो रहा है—'**तुलसी मस्तके यस्य वाचि नाम हरेः परम्।**'

राजाने वल्कलवस्त्रधारी तपस्वीको देखकर सम्मानपूर्वक उठकर उनका स्वागत किया और पाद्य-अर्घ्यादिके द्वारा पूजन करके उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाया। फिर नम्रतापूर्वक कहा—'आज मेरा जीवन धन्य हो गया, जो आप-सरीखे महात्माओंके चरण यहाँ टिके। अब कृपापूर्वक भगवान् हरिकी कोई कीर्तिकथा सुनाइये।' राजाकी यह बात सुनकर मुनिने बड़े जोरसे हँसकर कहा—'कौन हरि? और किसकी कीर्तिकथा? यह सब वहम है।

संसारमें कर्म ही प्रधान है—जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है, इसलिये तुम भी सत्कर्म करो। व्यर्थ हरि-हरि क्यों करते हो?'

भगवान् श्रीराममें आसक्तचित्त राजाको मुनिकी बात सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने कहा—'स्वामीजी! आप भगवान्की निन्दा क्यों करते हैं? भगवान्के निन्दकके लिये मेरे राज्यमें स्थान नहीं है। आप याद रखिये—कर्मोंके सर्वोत्तम फलोंको भोगनेवाले इन्द्र और ब्रह्माका भी भोग समाप्त होनेपर पतन होता है; परन्तु श्रीरामके सेवकोंका कभी पतन नहीं होता। ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण आदि इसके प्रमाण हैं। भगवान्की निन्दा करनेवाले लोगोंको ही यमदूतोंके द्वारा भयंकर पीड़ा सहनी पड़ती है। आप ब्राह्मण होकर भगवान्की निन्दा क्यों कर रहे हैं?'

राजाके मार्मिक वचनोंको सुनकर और उनकी अनन्य भगवन्निष्ठा देखकर यमराजने प्रसन्न होकर सर्वलोकपूजित निज रूप प्रकट कर दिया और वे राजासे बोले—'हे हरिसेवक! मैं तुम्हारे प्रति अति सन्तुष्ट हूँ, तुम वर माँगो।' राजाने यमराजको पहचानकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह वर दीजिये कि जबतक भगवान् श्रीराम अवतार लेकर यहाँ स्वयं न पधारें, तबतक मेरी मृत्यु न हो।' यमराजने कहा, 'ऐसा ही होगा। भगवान् राघव आपकी सारी मनःकामना पूर्ण करेंगे।' इतना कहकर यमराज अन्तर्धान हो गये। तबसे राजा सुरथ भगवान् श्रीरामके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आज श्रीरामके अश्वमेधीय अश्वको पकड़कर, इसी बहाने रामके दर्शन होंगे—ऐसा सोचकर राजा आनन्दमग्न हो गये।

लड़ाईकी तैयारी होने लगी। सुरथ राजाके चम्पक, मोहक

आदि दसों कुमार सेनाको साथ लेकर रणक्षेत्रकी ओर चले। उधर शत्रुघ्नकी सेना तो तैयार थी ही। शत्रुघ्नजीने अंगदको दूत बनाकर भेजा। अंगदने शत्रुघ्नके बल-विक्रमका बखानकर सुरथ राजाको घोड़ा छोड़ देनेके लिये बहुत कुछ समझाया, परन्तु राजाने स्पष्ट कह दिया—'आपका कहना सच है, परन्तु जबतक भगवान् श्रीरामचन्द्र पधारकर स्वयं दर्शन नहीं देंगे, तबतक शत्रुघ्नजीके भयसे मैं घोड़ेको नहीं छोड़ूँगा। मैं उन्हींकी शक्तिसे शत्रुघ्नजीसे धर्मयुद्ध करूँगा और मुझे निश्चय है कि श्रीरामके तेज-बल-प्रतापसे मैं शीघ्र ही शत्रुघ्नजीसहित सभी शूरवीरोंको जीतकर उन्हें अपने यहाँ राजबन्दी बनाकर रखूँगा। हाँ, श्रीरामके पधारनेपर उनके चरणयुगलोंमें प्रणाम करके मैं अपने पुत्रोंसहित सारे राजपाटको, धन-दौलतको, कुटुम्ब-परिवारको, सारी सेनाको और अपने-आपको उनके पावन चरणोंपर चढ़ा दूँगा।'

अंगदजी लौट गये। घमासान युद्ध हुआ और राजा सुरथने रामास्त्रके द्वारा शत्रुघ्नसमेत पुष्कल, अंगद, हनूमान् आदि सभी श्रेष्ठ वीरोंको बाँध लिया।

राजाके कहनेपर बन्दी हनूमान्ने भगवान् श्रीरामका स्मरण किया और स्मरण करते ही भरत, लक्ष्मणके द्वारा सुसेवित और ऋषि-मुनियोंके द्वारा घिरे हुए भगवान् श्रीराम पुष्पकविमानपर सवार होकर तुरन्त वहाँ आ पहुँचे।

भगवान् श्रीरामचन्द्रको पधारे देखकर सुरथको जो अपार आनन्द हुआ, उसकी तुलना सैकड़ों मोक्षसुखसे भी नहीं हो सकती। सुरथ भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान्के चरणोंमें बार-बार नमस्कार करने लगे। नमस्कार करते-करते वे रुके ही नहीं। तब भगवान्ने चतुर्भुजरूप होकर चारों हाथोंसे पकड़कर भक्त सुरथको

हृदयसे लगा लिया और पुलकित होकर आनन्दाश्रुओंसे उसका मस्तक सिंचन करने लगे। फिर बोले—'सुरथ! तुम्हारा जीवन सार्थक हो गया। तुमने अतुल बलशाली हनूमान्‌को बाँधकर बड़ा काम किया। तुम्हारी शूरताको धन्य है।' तदनन्तर भगवान्‌की कृपादृष्टि पड़ते ही सबके बन्धन खुल गये, घाव सूख गये और जो बेहोश पड़े थे उन सबको चेतना आ गयी। राजा तो भगवान्‌के चरणोंमें लुट पड़े और अपने अपराधके लिये क्षमा माँगने लगे। भगवान्‌ने कहा—'राजन्! क्षत्रियोंका धर्म ही है कि वे कर्तव्यवश अपने स्वामीके साथ भी युद्ध करते हैं। फिर तुमने तो यह युद्ध मेरे लिये, मेरी प्रीतिके लिये, मुझे पानेके लिये और मेरी अनुपमेय शक्तिका सहारा लेकर किया है। तुम्हारी इस समरपूजासे मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ हूँ।' राजा भगवान्‌के वचनोंको सुनकर पुनः चरणोंपर गिर पड़े। उनके नेत्रोंसे आँसुओंका प्रवाह बह चला। वाणी रुक गयी। भगवान्‌ने पुनः उनको गाढ़ आलिंगन देकर कृतार्थ किया। तदनन्तर तीन दिनतक सब लोग वहाँ रहे। राजाने पुत्रोंसहित भगवान्‌की बड़ी सेवा की। चौथे दिन घोड़ेको लेकर शत्रुघ्न उसके पीछे चल दिये और भगवान् श्रीराम मुनिमण्डलीसहित अयोध्याको लौट गये। राजाका भगवत्प्रेम और भी बढ़ गया और वे भी अपने पुत्र चम्पकको राज्यभार सौंपकर भगवान्‌की सेवाके लिये शत्रुघ्नकी सहायतार्थ अपार सेना साथ लेकर घोड़ेके पीछे-पीछे चल दिये। सारा जीवन राम-सेवामें बिताकर अन्तमें राजा साकेतधामको पधारे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

दो मित्र भक्त

कुरुक्षेत्रमें दो मित्र थे—एक ब्राह्मण और दूसरा क्षत्रिय। ब्राह्मणका नाम था पुण्डरीक और क्षत्रियका अम्बरीष। दोनोंमें गाढ़ी मित्रता थी। खाना-पीना, टहलना-सोना एक ही साथ होता था। जवान उम्रमें पैसे पास हों और कोई देख-रेख करनेवाला न हो तो मनुष्यको बिगड़ते देर नहीं लगती। कुसंग मिल जाय तब तो कहना ही क्या। ये दोनों मित्र भी कुसंगमें पड़ गये। देवपूजा, स्वाध्याय, श्राद्ध-तर्पण, पढ़ना-लिखना—सबको छोड़-छाड़कर रात-दिन वेश्या और शराबमें ही मतवाले रहने लगे। कभी स्वप्नमें भी वे परलोककी चिन्ता नहीं करते थे। इस प्रकार कुमार्गमें दोनोंकी आधी उम्र बीत गयी।

पापमें दोनोंका धन नष्ट हो गया। घर-द्वार नीलाम हो गये। गिड़गिड़ाकर माँगनेपर भी कहीं एक पैसा मिलना मुश्किल हो गया। धनहीन समझकर कुसंगी मित्रों और वेश्याओंने उन्हें घरसे निकाल दिया। कुलक्षणी होनेसे समाजमें तो कोई इनसे बोलना भी नहीं चाहता था। नितान्त दुःखी और निराश होकर दोनों गाँवसे निकल गये। पश्चात्तापकी अग्निसे संचित पाप कुछ दग्ध हुए। भटकते-भटकते दोनों एक यज्ञमण्डपके समीप जा पहुँचे। पापोंके जल जानेसे नीचे दबा हुआ कोई पूर्वका पुण्य प्रकट हुआ। ऋषियोंकी वेदध्वनिके शब्द इनके कानोंमें पड़े, कुछ पुण्य संचय हुआ। यज्ञ देखनेकी इच्छा हुई। दोनों यज्ञशालामें जा पहुँचे और श्रद्धापूर्वक यज्ञका दर्शन करने लगे। पवित्र वातावरणमें आनेसे और यज्ञदर्शनसे चित्तकी कुछ शुद्धि होनेपर दोनों अपने पापोंको याद कर-करके पछताने लगे। हाय! हमारा इस

दुष्कृतिरूप समुद्रसे कैसे उद्धार होगा? हमने विषयलोलुप होकर जान-बूझकर जो भयंकर पाप किये हैं, वे कैसे नष्ट होंगे? अब हम क्या करें? कौन हमें पापोंसे छुड़ाकर शान्तिकी राह बतलावेगा? हम-जैसे अभागे और कौन होंगे, जिन्होंने अपने कुलके और माता-पिताके धर्मको छोड़कर केवल पाप कमानेमें ही उम्र बिता दी? इस सभामें ये ब्रह्मनिष्ठ महात्मा ब्राह्मण बड़े ही दयालु मालूम होते हैं, पापोंसे छूटनेका कोई उपाय ये जरूर बतला देंगे।

मनमें ऐसा निश्चय करके पुण्डरीक और अम्बरीष दोनों मित्र ऋषियोंके चरणोंमें गिर पड़े और अपने-अपने पापोंको सरल चित्तसे भलीभाँति बखान-बखानकर बतलाने लगे और रोते हुए कातर कण्ठसे पापोंसे छूटनेका उपाय पूछने लगे। पाप और पुण्य दोनों ही ऐसी चीज हैं, जो छिपानेसे बढ़ते हैं और प्रकट करनेसे घटते हैं। ज्यों-ज्यों इनके पाप इन्हींके मुँहसे प्रकट हुए त्यों-ही-त्यों वे मानो नष्ट होने लगे। ब्राह्मण बड़े दयालु थे, उन्होंने बड़े धीरजसे दोनोंकी बातें तो सुनीं, परन्तु वे कुछ व्यवस्था नहीं दे सके, परस्पर एक-दूसरेकी ओर ताककर चुप रह गये। उन्हें ऐसा कोई प्रायश्चित्त ही न सूझ पड़ा जिससे इनके पापोंका नाश हो सकता हो। ब्राह्मणोंको चुप देखकर दोनों मित्र और भी हताश होकर रोने लगे। तब ब्राह्मणोंके समूहमें बैठे हुए एक दयार्द्रहृदय भक्तने बड़े ही स्नेहके साथ मुसकराते हुए उन्हें धीरज बँधाकर कहा—'हे ब्राह्मण और क्षत्रिय! घबराओ नहीं; भगवान्‌के शरण हो जाओ। भगवत्कृपासे शरणागतके सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। तुम अपने पापोंके लिये जो पश्चात्ताप कर रहे हो, यह बड़ा ही शुभ लक्षण है। जो मनुष्य पूर्वमें किये गये पापोंके लिये

पश्चात्ताप करता है, आगे पाप न करनेका दृढ़ संकल्प कर लेता है और अपना शेष जीवन भगवान्‌के चरणोंमें सौंपकर भगवान्‌का भजन करने लगता है, उसके सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं और भगवत्कृपासे वह भगवान्‌के दुर्लभ दर्शन पाकर कृतार्थ होता है। अतएव यदि तुम पापोंसे छूटना चाहते हो तो शीघ्र ही श्रीजगन्नाथधाम—पुरीमें जाओ और वहाँ भगवान् दारुमय पुरुषोत्तमके दर्शन करो। उन शंख-चक्र-गदाधारी जगन्नाथके शरण होनेपर तुम्हारे पाप नष्ट हो जायँगे। तुम उन विभु भगवान्‌के शरण हो जाओ, वे कृपासागर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे।'

भक्त महर्षिसे इस प्रकार उपदेश प्राप्त कर दोनों मित्र बड़े हर्षसे पुरुषोत्तमक्षेत्रको चले और मन-ही-मन भगवान् विष्णुका ध्यान करते हुए अपने पूर्वके पापोंके लिये अत्यन्त ही अनुतप्त हुए दोनों कुछ दिनोंमें भगवान्‌के धाम पुरीमें जा पहुँचे। उन्होंने तीर्थराज समुद्रके जलमें स्नान किया और भगवान्‌के मन्दिरके दरवाजेपर साष्टांग प्रणाम करते हुए वे भगवान्‌की ओर देखने लगे। परन्तु उन्हें भगवान्‌की मूर्तिके दर्शन नहीं हुए। भगवत्-मूर्तिके दर्शन न होनेसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे भगवान्‌के पापनाशक नामका अत्यन्त आर्तभावसे कीर्तन करते हुए वहीं पड़े रहे। तीसरे दिन रातको उन्हें एक ज्योतिके दर्शन हुए। उसके बाद तीन दिन वे निश्चल भावसे फिर कीर्तन करते हुए वहीं रहे। सातवीं रात्रिको उन्हें भगवान्‌की मूर्तिके दर्शन हुए। फिर देवताओंका स्तवन सुनायी दिया। तब वे पापसे छूटकर साक्षात् भगवान्‌का दर्शन पाने लगे।

उन्होंने देखा, भगवान्‌के हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म है। दिव्य अलंकारोंसे भगवान् सजे हुए हैं। भगवान्‌के चरणोंमें रत्नजटित पादुकाएँ हैं। खिले हुए कमलके समान भगवान्‌के नेत्र हैं और वे

प्रसन्नमुख हैं। बायीं ओर भगवती लक्ष्मीजी विराजमान हैं और भगवान्‌को पानका बीड़ा दे रही हैं। अनेक परिचारिकाएँ भाँति-भाँतिसे भगवान्‌की सेवा कर रही हैं। देवता, सिद्ध और सनकादि दिव्य मुनिगण सिर झुकाये और हाथ जोड़े भगवान्‌का स्तवन कर रहे हैं। भगवान् मुसकराते हुए और कृपाकी नजरसे देखते हुए उन्हें निहाल कर रहे हैं। नारदादि मुनि और गन्धर्वगण सामने बैठे हुए मनोहर संगीत गा रहे हैं। भगवान् भक्तोंके गाये हुए संगीतमें मन लगाकर उनपर अत्यन्त अनुकम्पा प्रकट कर रहे हैं। प्रह्लाद आदि भक्तशिरोमणि सामने बैठे हुए उनके स्वरूपका एकाग्रभावसे ध्यान कर रहे हैं और भगवान् मानो उन्हें अपनेमें लीन किये लेते हैं। भगवान्‌के वक्षःस्थलपर स्थित कौस्तुभमणिमें सामने बैठे हुए देव-गन्धर्वादिका प्रतिबिम्ब पड़नेसे मानो साक्षात् उनकी विश्वरूप मूर्ति प्रकट हो रही है। भगवान्‌के मस्तकपर अनवरत पुष्पवृष्टि हो रही है। इस प्रकार नाना भाँतिसे दिव्य लीलाविलासी भगवान्‌के दर्शन करते ही उसी क्षण पुण्डरीक और अम्बरीषको सारी विद्याएँ प्राप्त हो गयीं। सरस्वती मानो उनकी जीभपर आ विराजीं। वेदोंने उनके हृदयमें स्थान कर लिया और वे हाथ जोड़कर भगवान्‌की बारम्बार प्रदक्षिणा करके अत्यन्त हर्षपूर्वक साष्टांग दण्डवत् कर भाँति-भाँतिसे भगवान्‌का स्तवन करने लगे।

उन दोनोंके स्तुति करनेके बाद देवताओंने भगवान्‌का स्तवन और पूजन किया। अनन्तर सब देवता वहाँसे चले गये। तब पुण्डरीक और अम्बरीषकी आँखें खुलीं और उन्होंने ज्ञानचक्षुओंके द्वारा स्वप्नकी भाँति भगवान्‌की दिव्य लीलाओंको देखा। कुछ कालके लिये वे दिव्य भावापन्न हो गये। इसके बाद उन्होंने फिर भगवान्‌का दिव्य दर्शन किया। अबकी बार उन्होंने देखा भगवान् दिव्य सिंहासनपर

विराजमान हैं। उनके शरीरकी कान्ति नील मेघके समान है। दोनों नेत्र खिले हुए कमलकी भाँति शोभा पा रहे हैं। लाल-लाल ओठ, मनोहर नासिका और कानोंमें दिव्य कुण्डल शोभित हैं। गलेमें वनमाला, हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं। चौड़ी छाती है। गलेमें मनोहर हार है। मस्तकपर अमूल्य मणियोंका मुकुट शोभा पा रहा है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न और कौस्तुभमणि तथा हाथोंमें दिव्य बाजूबन्द धारण किये हुए हैं। भगवान्की लम्बी भुजाएँ हैं, जो दीन और आर्त प्राणियोंके परित्राणके लिये सदा ही प्रस्तुत हैं। भगवान् दिव्य पीताम्बर पहने हुए हैं। कटिदेशमें सुवर्णसूत्र है। दिव्य माला और दिव्य गन्धसे भूषित हुए सुवर्णपद्मासनपर विराजमान हैं। पास ही दाहिनी ओर हलायुधधारी श्रीबलदेवजी तथा दोनोंके बीचमें सुभद्रादेवीजी शोभित हैं। भगवान्के बायीं ओर सुदर्शन चक्र है। इस प्रकार उन्होंने भगवान्के दर्शन करके उनका स्तवन किया और दोनों कृतार्थ हो गये। तदनन्तर वे भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिपरायण होकर निरन्तर नारायणका नाम-जप करते हुए अन्तमें भगवान्के परमधामको प्राप्त हुए।

कोई कितना भी पापी क्यों न हो, यदि वह पूर्वके पापोंके लिये पश्चात्ताप करे, रो-रोकर अपने पापोंको प्रकट करे और भगवान्के अनन्यशरण हो जाय तो भगवत्कृपासे उसके पापोंका शीघ्र ही नाश हो जाता है और वह भगवान्के दुर्लभ दर्शन कर कृतार्थ होता है। पुण्डरीक और अम्बरीषका यह इतिहास इस सिद्धान्तका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

(स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड ३)

भक्त राजा चित्रकेतु

प्राचीन कालमें शूरसेन नामक देशमें चित्रकेतु नामक सार्वभौम सदाचारी भगवद्भक्त राजा राज्य करते थे। राजा बुद्धि, बल, विद्या, श्री, कीर्ति, उदारता, ऐश्वर्य, रूप-लावण्य आदिसे सम्पन्न थे। पृथ्वी कामधेनुकी भाँति उन्हें मन-इच्छित वस्तु देती थी। उनके बहुत-सी रानियाँ थीं, परन्तु सन्तान एकके भी नहीं थी। राजा बुद्धिमान् होनेपर भी मोहवश सन्तानके अभावसे सदा दुःखी रहा करते थे। एक बार परदुःखकातर और परोपकारपरायण अंगिरा ऋषि सदाचारी और भगवान्के भक्त राजापर अनुग्रह करके उन्हें भगवन्मार्गपर सुदृढ़ करनेके उद्देश्यसे राजाके यहाँ पधारे; परन्तु राजाको पुत्रके अभावमें दुःखी देखकर उन्होंने ज्ञानोपदेश न देकर त्वष्टा देवताका यज्ञ किया और यज्ञ पूर्ण होनेपर यज्ञावशेष अन्न राजाको देकर कहा कि यह अन्न अपनी रानीको खिला दो, इससे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा और उससे तुम्हें हर्ष-शोक दोनों ही प्राप्त होंगे। ऋषिने सोचा कि भगवद्भक्ति और सदाचार होनेपर भी राजाके मनमें अभी पुत्रका मोह है। जबतक यह पुत्र-प्राप्तिके अनन्तर पुत्रसे होनेवाले दुःखको न देखेगा तबतक इसका मोह दूर होना कठिन है; इसलिये अभी ज्ञानोपदेश न करके उन्होंने यज्ञ कराके राजाकी पुत्र-कामना पूरी की। तदनन्तर वे वहाँसे चले गये। राजाने वह अन्न अपनी सबसे बड़ी श्रेष्ठ रानी कृतद्युतिको दिया और रानीने उसे भोजन करके राजासे गर्भ धारण किया। समय पूरा होनेपर बालक उत्पन्न हुआ। राजकुमारके जन्मसे राजाको बड़ी ही प्रसन्नता हुई, सारे राज्यमें आनन्द-बधाइयाँ बँटने लगीं।

परन्तु राजाकी दूसरी रानियोंको बड़ा सन्ताप हुआ, वे सब कृतद्युतिको पुत्र प्राप्त हुआ देखकर जलने लगीं और उन्होंने सौतियाडाहसे विवेकको खोकर विद्वेषवश राजकुमारको जहर दे दिया। राजकुमारकी मृत्यु हो गयी। राजा और रानी कृतद्युति दुःखसागरमें डूब गये। राजा सिर पीट-पीटकर रोने लगे। यहाँ एक तो यह सीखनेकी बात है कि एकसे अधिक विवाह करनेसे इस प्रकार अनर्थकी सम्भावना रहती ही है। राजा दशरथके मरण और श्रीरामके वनवासमें भी लौकिक दृष्टिसे यह सौतियाडाह ही प्रधान कारण था। अतः पुरुषको एक स्त्री रहते दूसरा विवाह भूलकर भी नहीं करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि संसारके तमाम विषय वियोगशील और दुःखमिश्रित हैं। जिस वस्तुकी प्राप्तिमें जितना सुख होता है, उसके नाश होनेपर उतना ही अधिक दुःख होता है। राजा चित्रकेतुको पुत्रकी प्राप्ति होनेपर जितना सुख हुआ था, उससे अनन्तगुना अधिक दुःख पुत्रकी मृत्युपर हो रहा है। राजा और रानी दोनों तरह-तरहके विलाप करके अति सन्तापसे बहुत ऊँचे स्वरसे ढाह मारकर रो रहे हैं। उन दोनों स्त्री-पुरुषोंके विलापको सुन-सुनकर आस-पासके सभी स्त्री-पुरुष दुःखी होकर रोने लगे। राजा चित्रकेतुको ऐसी विपत्तिमें पड़ा देखकर महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारद दयावश वहाँ आ पहुँचे। वे राजाको मृत बालकके पास मुर्देकी भाँति अचेत पड़े देखकर नाना प्रकारकी युक्तियोंसे उन्हें समझाने लगे। उन्होंने कहा—

'हे राजन्! तुम जिसके लिये इतना शोक कर रहे हो, रो रहे हो, बताओ तो सही, वह तुम्हारा कौन है, इस जन्मसे पहले तुम इसके कौन थे और अब आगे कौन होओगे? तुम यह निश्चय-

रूपसे समझ लो कि जैसे जलके प्रवाहसे एक जगहका बालू अलग-अलग कई जगह बह जाता है और कई जगहका दूर-दूरसे आ-आकर एक जगह इकट्ठा हो जाता है, ऐसे ही नियन्त्रणकर्ता कालके द्वारा सब देहधारियोंका अपने-अपने कर्मवश कभी संयोग और कभी वियोग हुआ करता है। यह पिता-पुत्रका सम्बन्ध आरोपित है, केवल कल्पनामात्र है। हमारे और तुम्हारे ये शरीर न जन्मके पहले थे, न मृत्युके बाद रहेंगे। इस समय भी वास्तवमें सत् नहीं हैं, अतएव शरीरके नाशसे तुम शोक न करो।'

ऋषियोंके वचन सुननेसे राजाको कुछ सान्त्वना मिली और वह उठकर आँसू पोंछकर कहने लगे—'हे महात्माओ! आप दोनों कौन हैं? आप बड़े ही ज्ञानी और महात्माओंमें भी महात्मा हैं। मुझ-सरीखे वियोगमें फँसे हुए लोगोंको ज्ञान देनेके लिये आप-सरीखे भगवत्प्रिय सिद्ध महात्मा निःस्वार्थभावसे अवधूत-वेश धारण किये पृथ्वीमें घूमा करते हैं। मैं ग्राम्य पशुके समान मूढ़बुद्धि हूँ, घोर अन्धकारमें डूब रहा हूँ। आप दोनों महात्मा ज्ञानरूपी दीपक जलाकर मुझको बचाइये।

राजाके ऐसे वचन सुनकर महर्षि अंगिराने कहा—'हे राजन्! मैं वही अंगिरा हूँ जिसने तुम्हारी प्रबल इच्छा देखकर तुम्हें यह पुत्र दिया था और मेरे साथ ये महात्मा ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारदजी हैं। हमको यह पता लगा कि इस समय तुम पुत्रशोकसे दुस्तर अज्ञानके समुद्रमें डूब रहे हो। तुम भगवान्के भक्त और ब्राह्मण हो, तुम्हारे लिये इस तरह मोहमें निमग्न होना उचित नहीं है। तुम्हारे इस मोहका नाश करनेके लिये ही हम दोनों यहाँ आये हैं। राजन्! मैं जब पहले आया था, तभी तुम्हें ज्ञानोपदेश करनेका

मेरा विचार था, परन्तु उस समय तुम्हें पुत्र-प्राप्तिके मोहमें पड़े देखकर मैंने पुत्र ही दिया। अब तुमको यह अच्छी तरह अनुभव हो रहा है कि जिनके पुत्र हैं, उन गृहस्थोंको कितना सन्ताप होता है। जबसे पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा मनमें जाग्रत् होती है, तभीसे दुःखका आरम्भ हो जाता है। पहले अभावका दुःख रहता है, गर्भाधान हो जानेपर दस महीनेतक माताको नाना प्रकारके दुःखोंको सहन करना पड़ता है। प्रसवकालकी पीड़ा तो असह्य होती है। बच्चेका जन्म होनेपर उनके लालन-पालनमें माता-पिताको महान् कष्ट होते हैं। परन्तु मोहवश वे माता-पिता इस कष्टमें सुखका स्वप्न देखते हैं। तदनन्तर जब वियोग होता है, पुत्रको छोड़कर मरना पड़ता है, अथवा पुत्र पहले मर जाता है, तब तो दुःखका कोई पार ही नहीं रहता। आज तुम भी इसी दुःखसे ग्रस्त हो रहे हो। यह निश्चय समझो कि स्त्री, धन, घर, ऐश्वर्य और नाना प्रकारकी सम्पत्तियाँ—ये सभी वस्तुएँ मोहके कारण इसी प्रकार जीवको सन्ताप देनेवाली हैं। शब्दादि विषय, राज्य, धन, पुत्र, स्त्री, स्वामी आदि सभी चीजें अनित्य और क्षणभंगुर हैं। ये पृथ्वी, राज्य, बल, खजाना, भृत्य, दीवान, सुहृद्, मित्र आदि सभी, शोक, मोह, भय और पीड़ा देनेवाले तथा गन्धर्व नगरकी भाँति (बिना ही हुए नेत्र-दोषसे आकाशमें दीखनेवाले पदार्थोंकी भाँति) जरा-जरा-सी देरमें दीखनेवाले और नष्ट होनेवाले हैं। ये सभी स्वप्न या मायामनोरथके सदृश असत् हैं। हे राजन्! ये सभी दृश्य पदार्थ मनःकल्पित हैं, यथार्थ नहीं हैं; क्योंकि ये अभी दीखते हैं और दूसरे ही क्षण नष्ट हो जाते हैं। अपनी-अपनी भावनाके अनुसार ही ये सुख-दुःखदायी प्रतीत होते हैं। यह द्रव्य-ज्ञान और क्रियात्मक शरीर ही

शरीराभिमानी जीवको नाना प्रकारके सन्ताप देनेवाला है। इसलिये एकाग्रचित्तसे तत्त्वका विचार करो और एक सत्-चित्-आनन्द-घन परमात्माको छोड़कर अन्य सभी वस्तुओंको असत् समझकर शान्ति धारण करो।'

तदनन्तर देवर्षि नारदने शोकसे व्याकुल राजाको सान्त्वना देनेके लिये राजकुमारके जीवात्माका आवाहन कर उसे जीवित किया और कहने लगे—'हे जीवात्मा! देखो, तुम्हारे माता-पिता और बन्धु-बान्धव तुम्हारे लिये रो रहे हैं। तुम इनके पुत्र और बन्धु हो, इनके पास क्यों नहीं रहते?' जीवात्माने कहा—'ये किस-किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए थे? मैं तो अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये देवता, मनुष्य, पशु आदि अनेक योनियोंमें भ्रमण कर रहा हूँ। जीव परस्परमें कभी भाई, कभी पिता, कभी पुत्र, कभी मित्र, कभी शत्रु, कभी सजातीय, कभी विजातीय, कभी रक्षक, कभी विनाशक, कभी आत्मीय, कभी उदासीन बनते रहते हैं। यहाँ कौन किसका अपना और यथार्थ सम्बन्धी हैं? ये लोग मुझे पुत्र मानकर रोनेके बदले शत्रु समझकर खुशी क्यों नहीं मानते? जैसे सोना-चाँदी आदि-आदि खरीद-बिक्रीकी चीजें खरीदने-बेचनेवाले व्यापारियोंके पास जाती-आती रहती हैं, उसी प्रकार जीव भी नाना प्रकारकी योनियोंमें जाता-आता रहता है। यहाँ घर-स्त्री, पुत्र आदिका कोई भी सम्बन्ध सच्चा और स्थायी नहीं है। जितने दिन जिसके साथ जिसका सम्बन्ध रहता है उतने दिन उसका उसपर मेरापन रहता है। आत्मा नित्य शुद्ध है, परन्तु जितने कालतक वह शरीरस्थ होकर जिसके पास रहता है, उतने कालतक उस जीवात्मापर उसका स्वत्व रहता है। आत्मा वास्तवमें न कभी मरता है, न जन्मता है। आत्मा नित्य,

अविनाशी, सूक्ष्म, सर्वाधार और स्वयं प्रकाश है। वस्तुतः श्रीभगवान् ही अपनी मायाके गुणोंद्वारा विश्वरूपमें प्रकट होते हैं। आत्माके लिये कोई अपना-पराया या प्रिय-अप्रिय नहीं है। वह एक है और हित तथा अहित करनेवाले मित्र-शत्रु आदि नाना प्रकारकी बुद्धियोंका साक्षीमात्र है। आत्मा साक्षीरूपसे सदा उदासीनवत् रहता है, वह किसी भी सम्बन्ध तथा गुण-दोषको ग्रहण नहीं करता। अतएव इनका पुत्रशोकसे व्याकुल होना मोहजनित है। आत्मा कभी भी मरता नहीं और शरीर नित्य रहता नहीं; फिर ये किसलिये रो रहे हैं?

राजपुत्रका जीवात्मा इतना कहकर चला गया। उसकी बातोंसे सबका मोह-बन्धन टूट गया। मृतदेहका अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। बालकको मारनेवाली रानियाँ भी इन बातोंको सुन रही थीं। जब उन्होंने जाना कि पुत्रादि सब दुःखके ही कारण हैं, तो वे बहुत ही लज्जित हुईं और उन्होंने यमुनातीरपर जाकर अपने पापका प्रायश्चित्त किया। राजा चित्रकेतु भी जीवात्मा और ऋषियोंके वचनोंसे शोक, मोह, भय और क्लेश देनेवाले और कठिनतासे छूटनेवाले घरके स्नेहको छोड़कर जैसे हाथी तालाबके कीचड़से निकलता है, वैसे ही गृहरूपी अँधेरे कुएँसे बाहर निकल आये और यमुनातटपर जाकर विधिपूर्वक स्नान और तर्पणादि करके मननशील और जितेन्द्रिय होकर महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारदजीसे भगवत्-पद-प्राप्तिका सरल साधन पूछने लगे। भक्त, जितेन्द्रिय और शरणागत राजा चित्रकेतुको अधिकारी जानकर भक्तराज देवर्षि नारदजीने उन्हें स्तुतिविद्या बतलाकर कहा कि तुम बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीरसे संयत होकर इस परम कल्याणकारी मन्त्रको ग्रहण करो; श्रद्धा, भक्ति और शरणागतिपूर्वक

सात दिनतक इसका अनुष्ठान करनेसे तुम्हें प्रभु संकर्षणदेवके दर्शन होंगे और हे नरेन्द्र! बड़े-बड़े देवगण जिन प्रभुके चरण-मूलका आश्रय ले द्वैत-भ्रमसे छूटकर शीघ्र ही जिस अतुलनीय महिमाको प्राप्त हुए हैं, तुम भी उसको प्राप्त हो जाओगे। वह स्तुतिमयी विद्या यह है—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये॥
आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः।
हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये॥
वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह।
अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते।
मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः॥
यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम्॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु।
नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद् द्रष्ट्रपदेशमेति॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परमपरमेष्ठिन्नमस्ते॥

(श्रीमद्भा० ६। १६, १८—२५)

'हे भगवन्! वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणरूपसे विराजमान आपको मैं शुद्ध मनसे नमस्कार करता हूँ। हे

विज्ञानघन! आप परमानन्दस्वरूप हैं, आत्माराम हैं, शान्त हैं; द्वैतदृष्टि आपसे दूर रहती है, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो! आप आत्मानन्दके अनुभवसे मायारचित प्रपंच आदि तरंगोंको निरस्त करते हैं, आप इन्द्रियोंके स्वामी और महान् हैं, आप ही विश्वरूपसे प्रकट हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे परमात्मन्! मनसहित समस्त इन्द्रियाँ आपके स्वरूपतक न पहुँचकर उपराम हो जाती हैं, आप सत् और असत्से परे, नाम-रूपरहित, केवल चित्स्वरूप हैं, आपके सिवा और कुछ है ही नहीं, आप हमारी रक्षा कीजिये। यह कार्य-कारणरूप जगत् जिसमें अवस्थित है, जिससे उत्पन्न होता है और जिसमें लय हो जाता है, जो मिट्टीसे बने हुए घड़े आदि पदार्थोंमें मिट्टीके समान सर्वत्र व्याप्त है, उन ब्रह्मस्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आकाशकी भाँति भीतर और बाहर सर्वत्र सदा व्याप्त रहनेपर भी मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण जिनको स्पर्श नहीं कर सकते, उन विभु भगवान्को मेरा नमस्कार है। देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन और बुद्धि—ये सब जिसके चैतन्यांशसे युक्त होनेपर ही अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं तथा जिस चैतन्यका सम्बन्ध न होनेपर ये वैसे ही क्रियाशून्य रहते हैं जैसे अग्निमें बिना तपाया हुआ लोहेका गोला जला नहीं सकता। वह चैतन्य ही सबका साक्षी कहलाता है। उस साक्षीस्वरूपको जाननेसे ही जीवका कल्याण होता है। उन महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपति भगवान्को नमस्कार है। महान् श्रेष्ठ भक्तगण निरन्तर अपने करकमलोंकी कलियोंसे आपके दोनों चरणकमलोंकी सेवा करते हैं। हे सर्वश्रेष्ठ सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है।'

देवर्षि नारद और महर्षि अंगिरा शरणागत चित्रकेतुको इस

स्तुतिमयी विद्याका उपदेश करके ब्रह्मलोकको चले गये। राजा चित्रकेतुने नारदजीके उपदेशानुसार सात दिनोंतक केवल जलपर रहकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्तसे उपर्युक्त विद्याका जाप किया। सात रात्रि बीतनेपर इस विद्याके प्रभावसे राजा चित्रकेतु विद्याधरोंके स्वामी हो गये। फिर कुछ दिनोंमें ही उस विद्याके बलसे राजा मनोगतिके अनुसार देवाधिदेव भगवान्‌के शेष स्वरूपके चरणोंमें जा पहुँचे। वहाँ जाकर राजाने देखा कि भगवान् संकर्षण सनत्कुमारादि सिद्धेश्वर महात्माओंसे घिरे बैठे हैं। उनका वर्ण कमलकी नालके समान गौर है, वे नील वस्त्र धारण किये, देदीप्यमान किरीट, केयूर, कटिसूत्र (तागड़ी) और कंकण आदिसे सुशोभित हैं। उनका मुख प्रसन्न और नेत्र लाल हैं। इस प्रकार शेषरूपमें सर्वेश्वर भगवान्‌के दर्शन करते ही राजाके सब पाप नष्ट हो गये और उनका अन्तःकरण स्वस्थ और निर्मल हो गया। प्रेमावेशसे शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे और वाणी रुक गयी। तदनन्तर राजाने आदिपुरुष भगवान् संकर्षणको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। राजाने स्तुति करना आरम्भ किया; परन्तु प्रेमावेशसे उनके कण्ठ रुक गये, बहुत देरतक स्तुति नहीं की जा सकी और वे पवित्रकीर्ति भगवान्‌के चरणप्रान्तको प्रेमाश्रुओंकी बूँदोंसे सींचने लगे। कुछ देरके अनन्तर जब कुछ बोलनेकी शक्ति आयी, तब राजाने एकाग्रचित्तसे शास्त्रानुसार जगद्‌गुरु परमेश्वरकी स्तुति की। स्तुतिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् अनन्त विद्याधराधिपति राजा चित्रकेतुसे कहने लगे—

'हे राजन्! नारद और अंगिराने मेरे सम्बन्धमें तुमको जिस विद्याका उपदेश दिया, उसीके प्रभावसे तुम मेरे दर्शन पाकर

सम्पूर्णरूपसे सिद्ध हो गये हो। मैं ही समस्त भूतप्राणी हूँ, मैं ही उनका आत्मा और उत्पन्न करनेवाला हूँ। देखो, शब्दब्रह्म और परब्रह्म दोनों मेरे ही नित्य स्वरूप हैं। लोकमें आत्मा सत्यरूपसे और आत्मामें लोक आरोपितरूपसे व्याप्त है और मैं दोनोंमें ही कारणरूपसे व्याप्त हूँ। ये दोनों मुझमें ही रचित हैं। जैसे सोया हुआ मनुष्य सपनेमें नाना प्रकारकी वस्तुओंको देखता और अपनेको विश्वके एक देशमें स्थित जागता हुआ मानता है, ऐसे ही प्रत्यक्ष जागना भी जीवकी उपाधिभूत बुद्धिकी ही एक अवस्था-विशेष है और वह मायासे ही आत्मामें कल्पित है। यह जानकर आत्माको उन अवस्थाओंका साक्षी और उनसे रहित समझो। सोया हुआ पुरुष सुषुप्ति-अवस्थामें जिसके द्वारा गाढ़ निद्राको और अतीन्द्रिय सुखको जानता है, वह आत्मारूप ब्रह्म मैं ही हूँ। हे राजन्! निद्रा और जागरण—इन दोनों अवस्थाओंका अनुसन्धान करनेसे जो पुरुष इन दोनोंमें ज्ञानके प्रकाशरूपसे स्थित है और दोनोंसे अलग है, वही परमज्ञान है और वही ब्रह्म है। इस द्रष्टारूपी ब्रह्मस्वरूपको भूलकर ही जीव आत्मासे अलग हो जाता है और इसीसे बार-बार जन्म-मरणरूप संसारकी प्राप्ति होती है; इस मनुष्य-शरीरमें ज्ञान और विज्ञानकी प्राप्ति होती है; जो इस मनुष्य-देहको पाकर भी आत्माको नहीं जानता, उसका किसी भी योनिमें कल्याण नहीं होता। विषयोंमें प्रवृत्तिसे ही क्लेश और उलटा फल होता है। विषयोंसे निवृत्त होनेमें कोई डर नहीं है, अतएव बुद्धिमान् पुरुषको विषयोंसे निवृत्त होना चाहिये। जगत्‌में स्त्री-पुरुष सभी सुखकी प्राप्ति और दुःखोंके नाशके लिये नाना प्रकारके कर्म किया करते हैं, परन्तु उन कर्मोंसे न तो उनको सुख ही मिलता है और न दुःख ही दूर होते हैं। इस

प्रकार कर्मोंमें लगे हुए अपनेको बुद्धिमान् और विज्ञ समझकर अभिमान करनेवाले पुरुषोंको सुख न मिलकर दुःख ही मिला करता है। आत्माकी सूक्ष्म गति जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंसे परे है, ऐसा समझकर विवेकके द्वारा इस लोक और परलोकके विषयोंसे चित्तको हटाना चाहिये और ज्ञान-विज्ञानके द्वारा सन्तुष्ट होकर मनुष्यको मेरी भक्ति करनी चाहिये। योगमार्गमें निपुण बुद्धिवाले मनुष्योंको यह बात भलीभाँति जान लेनी चाहिये कि एक ही परमात्मा सब स्थानोंमें सदा-सर्वदा व्याप्त है। वही सब कुछ है। हे राजन्! तुम यदि सावधान होकर श्रद्धापूर्वक मेरे इस उपदेशको ग्रहण करोगे तो शीघ्र ही ज्ञान-विज्ञानसे युक्त होकर तुम मेरे स्वरूपकी प्राप्तिरूप परम सिद्धिको पा जाओगे।' जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि इस प्रकार चित्रकेतुको आश्वासन देकर उनके देखते-ही-देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

अब राजा चित्रकेतु समदृष्टिको प्राप्त होकर द्वन्द्वरहित हो गये। वे कामना, स्पृहा, ममता और अहंताका त्याग कर नित्य परमात्मामें संयुक्त हुए तपोबलसे चौदहों भुवनोंमें इच्छानुसार विचरण करने लगे। एक दिन उन्होंने तेजोमय विमानपर चढ़े हुए आकाशमार्गसे गमन करते समय मुनियोंकी सभामें भवानीको भगवान् शंकरजीकी गोदमें बैठे देखा। चित्रकेतुको यह व्यवहार विपरीत मालूम दिया। उन्होंने इसकी कुछ कटु आलोचना की। इसपर भगवान् शंकर तो हँस दिये, परन्तु भवानीजीसे नहीं रहा गया। उन्होंने यह सोचकर कि यह बहुत अविनीत हो उठा है, अतः भगवान्के चरणोंमें रहनेलायक नहीं है, चित्रकेतुको शाप दे डाला कि 'तू जाकर असुर-योनिमें जन्म ग्रहण कर।'

श्रीसतीजीके शापको सुनकर यद्यपि राजा चित्रकेतुको कुछ भी शोक नहीं हुआ, क्योंकि वे सर्वत्र सब समय भगवान्‌को देखते थे। इससे उन्होंने समझा कि असुर-योनिमें भी मेरे भगवान् तो मुझसे अलग नहीं होंगे, फिर क्या चिन्ता है; तथापि शिष्ट व्यवहारके अनुसार भवानीजीसे क्षमा माँगनेके लिये वे विमानसे उतरकर सतीके चरणोंपर गिरकर नम्रतापूर्वक उनसे बोले—'माताजी! आपने कृपा करके जो शाप दिया उसको मैं सादर स्वीकार करता हूँ। मैं इस बातको जानता हूँ कि देवगण जो कुछ मनुष्यके लिये कहते हैं, सो उनके कर्मानुसार ही कहते हैं। अज्ञानसे मोहित होकर प्राणी इस संसारचक्रमें घूमता हुआ सदा और सर्वत्र सुख-दुःख भोगता ही रहता है। इस गुणोंके प्रवाहरूप संसारमें शाप-वरदान, स्वर्ग-नरक और सुख-दुःख वस्तुतः कुछ भी नहीं हैं। हे देवि! स्वयं बन्धनादिसे रहित एक परमेश्वर ही अपनी मायाके द्वारा सब प्राणियोंको रचते हैं और उनके सुख-दुःख और बन्ध-मोक्षकी व्यवस्था करते हैं। हे माता! उन ईश्वरका न कोई प्रिय है, न अप्रिय; न अपना है, न पराया; न कोई जातिवाला है, न बन्धु है; वे सर्वत्र समान और असंग हैं। उन भगवान्‌को जब सुखमें प्रीति नहीं है तब क्रोध कहाँसे होगा; तथापि उनकी मायासे जीव जिन पुण्य-पापरूप कर्मोंको करता है, वे ही उसके सुख-दुःख, हित-अहित, बन्ध-मोक्ष, जन्म-मृत्यु और संसारके कारण होते हैं। हे देवि! मैं शापसे छूटनेके लिये आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। मेरे जो शब्द आपको बुरे लगे हैं, उनके लिये आप मुझे क्षमा कीजिये!

इस प्रकार कहकर शिव-सतीको प्रसन्न करके राजा चित्रकेतु सबके सामने ही विमानपर चढ़कर आकाश-मार्गसे चले गये।

उनकी ऐसी स्थिति देखकर वहाँ बैठे हुए सभी लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर श्रीशिवजीने भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए सबके सामने सतीजीसे कहा—'हे सुश्रोणि! देखा तुमने अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीहरिके दासानुदास निःस्पृह महात्माओंका माहात्म्य! भगवान् नारायणके परायण हुए भक्तगण किसीसे कहीं भी नहीं डरते; वे नित्य, निर्भय हुए स्वर्ग, नरक और मोक्षमें समदृष्टि रहते हैं। हे देवि! भगवान्‌की लीलासे ही जीवोंको देहकी प्राप्ति होकर उसमें सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-अनुग्रह हुआ करते हैं और उनमें, जैसे स्वप्नमें मनुष्यको सुख-दुःख होता है अथवा रस्सीमें जैसे सर्पका भ्रम होता है, वैसे ही अज्ञानसे इष्ट-अनिष्टका बोध होता है। भगवान् वासुदेवमें भक्ति करनेवाले ज्ञान और वैराग्यके बलसे सम्पन्न पुरुष किसी भी सांसारिक पदार्थको 'यह अच्छा है' ऐसा समझकर उसका आश्रय ग्रहण नहीं करते। मैं, सनत्कुमार, नारद, मरीचि आदि ब्रह्माके पुत्र महर्षिगण तथा इन्द्रादि देवता भी जब परमेश्वरकी लीलाके रहस्यको उनकी कृपा बिना नहीं समझ पाते तब जो लोग उनके अंशके भी अंश हैं, वे अपनेको अलग-अलग ईश्वर मानकर अभिमान करनेवाले उनके स्वरूपको कैसे जान सकते हैं? उन श्रीहरिके कोई भी प्रिय-अप्रिय या अपना-पराया नहीं है, तथापि वे सब प्राणियोंके आत्मा होनेके कारण सब प्राणियोंके प्रिय हैं। हे सती! यह महाभाग चित्रकेतु उन्हीं भगवान्‌का प्यारा भक्त, भगवान्‌की रुचिके अनुसार चलनेवाला, शान्त और सर्वत्र समदृष्टि है। मैं भी उन्हीं अच्युतका प्रिय हूँ। इसी कारण मुझको उसपर क्रोध नहीं हुआ। अतएव इस प्रकारके शान्त, समदृष्टि, भगवद्भक्त, महात्मा पुरुषोंके आचरण देखकर आश्चर्य नहीं मानना चाहिये।'

भगवान् श्रीशिवजीके वचन सुनकर देवीका विस्मय दूर होकर उनका चित्त शान्त हुआ। उलटा शाप देनेमें समर्थ होनेपर भी भगवद्भक्त चित्रकेतुने शान्तभावसे बिना किसी हर्ष-विषादके देवीके शापको सिर चढ़ा लिया। यही तो उनकी साधुता है। इसी शापके कारण चित्रकेतु अगले जन्ममें त्वष्टाकी दक्षिणाग्निमें उत्पन्न होकर वृत्रके नामसे प्रसिद्ध हुए और निरन्तर प्रेमपूर्वक भगवान्में चित्त लगाये हुए अन्तमें भगवान्को प्राप्त हो गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

दानवराज वृत्रासुर

एक समय देवराज इन्द्रके अनम्र तथा उद्धत व्यवहारसे देवगुरु बृहस्पति नाराज हो गये। इन्द्रने पश्चात्ताप करके उनको तलाश भी किया, परंतु वह नहीं मिले। गुरुहीन देवताओंको दैत्योंने हरा दिया, तब ब्रह्माजीकी रायसे देवराज इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र अमित तेजस्वी विश्वरूपको अपना गुरु बनाया। विश्वरूप 'नारायणकवच' जानता था, उस कवचके प्रभावसे इन्द्र बलवान् हो गया और देवताओंने पुनः दैत्योंपर विजय प्राप्त की। कुछ समय बाद इन्द्रको यह सन्देह हुआ कि विश्वरूपकी माता असुरवंशकी होनेके कारण वह गुप्तरूपसे असुरोंको यज्ञका हविर्भाग पहुँचाता है; इस प्रकारके सन्देहसे इन्द्रके मनमें असुरोंकी बलवृद्धिका भय हुआ और क्रोधावेशमें उसने विश्वरूपको मार डाला। पुत्रकी मृत्युसे शोकाकुल त्वष्टाने बदला लेनेके लिये इन्द्रका शत्रु उत्पन्न करनेकी इच्छा की और यज्ञ करके विश्वरूपके शरीरमन्थनद्वारा अति उग्ररूप वृत्रको उत्पन्न किया। यह वृत्रासुर पूर्वजन्ममें भगवान्का परम भक्त राजा चित्रकेतुके नामसे प्रसिद्ध था। पार्वतीके शापवश इसे यह असुर-शरीर प्राप्त हुआ था। परंतु इस देहमें भी पूर्वाभ्यासवश इसकी भगवद्भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रही। अस्तु।

वृत्रासुरने साठ हजार वर्षतक कठिन तपस्या करके अमित शक्ति प्राप्त की और सबको जीतकर वह निर्भयरूपसे जगत्में अपार ऐश्वर्यका भोग करने लगा। यद्यपि वृत्र असुर था, उसका शरीर भी आसुरी चिह्नोंवाला था, परंतु उसके हृदयमें भगवान्की ओर आकर्षण था, जगत्की नश्वरताको वह खूब जानता था, भगवान्के प्रति उसके मनमें भक्ति थी। इन्द्रके साथ शत्रुता

करनेके लिये ही वह उत्पन्न हुआ था, इसलिये बाहरी दिखावेमें वह अवश्य ही महान् इन्द्रशत्रु था, सारे देवता उसके नामसे काँपते थे; परंतु मनमें उसका किसीसे भी वैर नहीं था; वह सबमें अपने भगवान्‌को देखकर अपने स्वाँगके अनुसार घोर कर्म करता हुआ जगत्‌में विचरता था। एक बार वह भगवदिच्छासे देवताओंसे हार गया, तब असुरगुरु शुक्राचार्य उसके पास आये। शुक्राचार्यने आकर देखा कि वृत्रके चेहरेपर उदासीका कोई चिह्न नहीं है, वह जैसा राज्य करनेके समय प्रफुल्लित था वैसा ही राज्यसे भ्रष्ट होनेपर भी है। तब शुक्राचार्यने उससे पूछा—

'हे वृत्र! तुम हार गये हो, राज्यसे च्युत हो; क्या इससे तुम्हें कोई दुःख नहीं होता?' वृत्रने कहा—भगवन्! मैं सत्य और तपके प्रभावसे जीवोंके आने-जाने और सुख-दुःखके रहस्यको जान गया हूँ, इससे मुझको किसी भी अवस्थामें हर्ष या शोक नहीं होता। जीव अपने-अपने कर्मवश काल-भगवान्‌की प्रेरणासे नरक या स्वर्गमें जाकर नियत समयतक पाप या पुण्यका फल भोगकर फिर बचे हुए पाप-पुण्यके कारण मनुष्य, पशु या पक्षी-योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं तथा मरकर पुनः नरक या स्वर्गमें जाते हैं। इस प्रकार उनका आवागमन हुआ करता है। मैंने भगवत्कृपासे अदृष्ट परमात्माको देख लिया है, इसलिये मुझको जीवोंके आने-जानेमें और भोगोंकी प्राप्ति-अप्राप्तिमें कोई विकार नहीं होता। आप जानते हैं, मैंने पहले विजयकी इच्छासे दीर्घकालतक बड़ा तप किया था और तपोबलके प्रभावसे त्रैलोक्यविजयी होकर परम ऐश्वर्यवान् बन गया था। अब मैंने अपने कर्मोंसे ही उस ऐश्वर्यका नाश कर दिया है, अतएव मुझे उस गये हुए ऐश्वर्यके लिये कोई शोक नहीं है। पहले जिस समय युद्धकी इच्छासे इन्द्र मेरे सामने आया था, उस समय मैंने अपने स्वामी भगवान् श्रीहरिनारायणके

दर्शन किये थे; वे श्रीहरि ही वैकुण्ठ, पुरुष, अनन्त, शुक्ल, विष्णु, सनातन, मंजुकेश, हरिश्मश्रु और समस्त भूतोंके पितामहके नामसे प्रसिद्ध हैं, मैं समझता हूँ, जिस तपसे मुझे श्रीभगवान्‌के दर्शन हुए थे, उस तपका कुछ अंश अभी मेरे अन्दर वर्तमान है, इसीसे मैं अन्य किसी विषयकी इच्छा न करके आपसे यह जानना चाहता हूँ कि किस कर्मसे और किस ज्ञानसे परब्रह्म भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। हे गुरो! आप कृपा कर मुझे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये। वृत्रके इन असुरभावोंको नष्ट करनेवाले परमार्थप्रद वचनोंको सुनकर तथा उसे सृष्टि-स्थिति-संहारके एकमात्र आश्रय श्रीभगवान्‌के प्रति दृढ़ भक्तिपरायण जानकर शुक्राचार्य बोले—

नमस्तस्मै भगवते देवाय प्रभविष्णवे।
यस्य पृथ्वीतलं तात साकाशं बाहुगोचरः॥
मूर्धा यस्य त्वनन्तं च स्थानं दानवसत्तम।
तस्याहं ते प्रवक्ष्यामि विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्॥

(महा०, शान्ति०, २८०। १-२)

'हे दानवश्रेष्ठ! हे तात! यह भूमण्डल जिनका अधोभाग है, आकाशसहित ऊपरका लोक जिनकी भुजाओंका मध्य भाग है और मोक्षधाम जिनका मस्तकरूप है, उन भगवान् नारायणको मैं नमस्कार करके तुझे उन श्रीविष्णुका श्रेष्ठ माहात्म्य सुनाता हूँ।'

वृत्रासुर और शुक्राचार्यमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि धर्मात्मा महामुनि सनत्कुमार उनका सन्देह नाश करनेके लिये वहाँ पधारे। असुरराज वृत्र तथा मुनिवर शुक्राचार्यने उनकी यथोचित पूजा की। वह उत्तम सिंहासनपर विराजित हुए। तदनन्तर शुक्राचार्यके अनुरोध करनेपर सनत्कुमार भगवान् विष्णुका माहात्म्य कहने लगे—'हे दैत्येन्द्र! मैं तुमसे भगवान्‌का माहात्म्य कहता हूँ, ध्यान देकर

सुनो। यह समस्त विश्व भगवान् विष्णुमें स्थित है। वह परमपुरुष भगवान् ही कालके द्वारा चराचर भूत-प्राणियोंको रचते और उनका संहार करते हैं। ये समस्त भूत उन्हींसे उत्पन्न होकर उन्हींमें लय हो जाते हैं। शास्त्रज्ञान, बाह्य तप और यज्ञद्वारा उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। केवल इन्द्रियसंयमसे अर्थात् मनसहित समस्त इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर उनमें लगानेसे वह मिलते हैं। जो दृढ़तर अध्यवसायके साथ निष्कामभावसे भगवदर्थ कर्मरूपी यज्ञ और शम-दमादि साधनोंद्वारा चित्तकी शुद्धि करते हैं, वही परलोकमें मोक्षको प्राप्त होते हैं। जैसे सुनार चाँदी, सोने आदि धातुको बार-बार अग्निमें तपा-तपाकर शुद्ध करते हैं, उसी प्रकार जीव भी बार-बार जन्म लेकर प्रयत्न करता हुआ शुद्ध होता है। हाँ, महान् प्रयत्न करनेवाला साधक पुरुष एक ही जन्ममें शुद्ध हो जाता है। शरीरका मैल उतारनेके समान यत्नपूर्वक अन्तःकरणका मल भी दूर करना चाहिये। जैसे सरसोंके तेलमें थोड़े-से पुष्पोंकी सुगन्धि देनेसे ही तेलकी गन्ध नहीं मिटती, उसी प्रकार थोड़े-से प्रयत्नसे दोष दूर नहीं होते, परंतु जैसे बार-बार बहुत-से पुष्पोंकी सुगन्धि देनेसे तेलकी गन्ध नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार बुद्धिसे विषयासक्तिके दोष भी बार-बार महान् प्रयत्न करनेसे और सत्यके सेवनसे ही नष्ट होते हैं।

'हे दानवराज! अज, अविनाशी भगवान् नारायण ही इस चराचर विश्वकी सृष्टि करते हैं, वही समस्त भूतोंमें देहरूपसे और जीवरूपसे विराजित हो रहे हैं। वही मनसहित ग्यारह इन्द्रियोंके रूपमें होकर जगत्का उपभोग करते हैं। उन जगद्रूप परमात्माका चरण यह पृथ्वी है, स्वर्ग मस्तक है, दिशाएँ चार भुजा हैं, आकाश कान हैं, सूर्य नेत्र हैं, चन्द्रमा मन है, ज्ञान बुद्धि है, जल जिह्वा है तथा आकाशमें रहनेवाले ग्रह उनकी भृकुटिका

मध्यभाग है। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण भी वही नारायण हैं। वह सब आश्रम, कर्म और संन्यासके फलस्वरूप हैं। वेदके छन्द उनके रोम हैं, प्रणव उनकी वाणी है। वह सभी आश्रमोंके आश्रय हैं, उनका मुख सब ओर है! वही ब्रह्म हैं, वही परम धर्म हैं, वही तप हैं, वही सत्-असत् हैं, वही मन्त्र, शास्त्र, यज्ञपात्र तथा सोलह ऋत्विक्युक्त सर्वयज्ञरूप हैं। वही ब्रह्मा, विष्णु, अश्विनीकुमार, पुरन्दर, मित्र, वरुण, यम और कुबेर हैं। ऋत्विक्गण उन्हें इन्द्र, वैश्वानर आदि भिन्न-भिन्न रूपोंमें देखते हुए भी यह जानते हैं कि वह सनातन परमात्मा एक ही हैं। यह समस्त जगत् उन एक अद्वितीय भगवान् नारायणके ही वशमें है। वेद उन्हींको विविध भूतोंका एकमात्र कारण बतलाते हैं। जब मनुष्य दिव्य ज्ञानदृष्टिसे सबको एक नारायणमय देखते हैं, तभी ब्रह्मका स्वरूप प्रकट होता है अर्थात् वे ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।'

'जीव जन्म लेकर अपने-अपने कर्मोंके अनुसार निर्दिष्ट लोकमें रहते हैं और अन्तमें प्रलयकालमें प्रकृतिके साथ ब्रह्ममें प्रवेश कर जाते हैं। ब्रह्मवित् महात्मा पाँचों इन्द्रियोंका संयम करके सुख-दुःखमें सम रहते हैं। उनके अन्दर ब्रह्मविद्या और वेदविद्या रहती हैं। जो पुरुष निर्मल मनसे परम पवित्र गतिको जानना चाहता है, वह ब्रह्मका साक्षात्कार कर नितान्त दुर्लभ मोक्षस्वरूप सनातन अविनाशी परब्रह्मको प्राप्त होता है।'

सनत्कुमारके इन वचनोंको सुनकर वृत्रासुरको बहुत ही आनन्द हुआ। वह अब परम दृढ़ निश्चयके साथ सबमें, सब ओर, सर्वथा भगवान्‌का अनुभव करने लगा। उसकी धार्मिकता, उसका ज्ञान और उसकी भगवद्भक्ति ऐसी पवित्र और महान् हो गयी कि किसीके साथ उसकी तुलना नहीं हो सकती। वह

राज्यहीन होकर भी आसक्ति छोड़कर निर्भयतापूर्वक शत्रुओंमें रहने लगा। इन्द्रने देवताओंसहित उसके वधका बहुत प्रयत्न किया, परंतु वह सफल नहीं हुआ। तब सब देवताओंने मिलकर भगवान्‌की ज्ञानमयी स्तुति की और उनसे शीघ्र ही वृत्रासुरको वध करनेका वरदान माँगा। भगवान्‌ने उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर मार्मिक शब्दोंमें उनसे कहा—

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः।
मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित्॥
न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक्।
तस्य तानिच्छतो यच्छेद् यदि सोऽपि तथाविधः॥
स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः॥

(श्रीमद्भा० ६। ९। ४८—५०)

'हे देवताओ! मेरे प्रसन्न होनेपर क्या नहीं मिल सकता, तथापि जिसकी बुद्धि मुझमें अनन्यरूपसे लग जाती है, वह मेरे तत्त्वको जाननेवाला पुरुष मुझको छोड़कर और किसी भी वस्तुको नहीं चाहता। परंतु विषयोंको ही यथार्थ तत्त्व समझनेवाला कृपण पुरुष अपने कल्याणको नहीं जानता, इसलिये वह अकल्याणकारी विषय ही माँगता है; उस विषयोंकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको यदि कोई विषय दे तो वह भी एक प्रकारसे वैसा ही अज्ञानी होता है। जैसे सद्वैद्य रोगीके चाहनेपर भी उसे कुपथ्य नहीं देता, उसी प्रकार कल्याणको जाननेवाला विद्वान् भी अज्ञानी पुरुषको बन्धनमय भोग प्रदान करनेवाले कर्मका उपदेश नहीं करता।'

भगवान्‌ने इन शब्दोंमें जो कुछ कहा उससे यही आशय लेना चाहिये कि 'तुमलोगोंने स्तुति तो बहुत विद्वत्तापूर्ण की, परंतु ऐसी

स्तुति करके भी अन्तमें मुझसे माँगी सांसारिक विजय और भोगराशि ही। बड़े ही दुःखकी बात है कि तुमने मूर्खोंकी भाँति अपने यथार्थ कल्याणकी ओर ध्यान नहीं दिया, मुझको पाकर भी मुझसे दुर्लभ भक्ति न माँगकर विषयभोगोंकी ही इच्छा करते हो। अब भी मैं तुम्हें सचेत करता हूँ। यदि तुम मेरे तत्त्वको जानते हो तो अबोध शिशुकी भाँति मुझपर ही निर्भर हो जाओ; फिर जैसे स्नेहमयी माता माँगनेपर भी बच्चेको जहर न देकर उसे कल्याणकारी वस्तु ही देती है, वैसे ही मैं भी तुम्हें भोगोंसे हटाकर अपनी ओर खींच लूँगा। तुम मुझे सद्वैद्य समझकर अपने-आपको मुझे समर्पण कर दो, किस औषधसे तुम्हारा रोग मिटेगा, यह मैं जानता हूँ और स्वयं तुम्हें वही दूँगा। वृत्रासुरको मारने, न मारनेकी चिन्ता छोड़ दो; निर्वैर हो जाओ। देखो, वह वृत्र असुर होकर भी कैसा मेरी कृपापर निर्भर कर रहा है, वह इस समय हारा हुआ है, तथापि मुझसे कुछ भी नहीं चाहता। तुम भी वैसा ही कर सकते हो।'

देवता भगवान्‌के वचन सुनकर चुप रहे—भगवान्‌ने समझ लिया ये देवता विषयोंके ही अभिलाषी हैं। इन्हें अपने श्रेयकी अभी इच्छा नहीं है, उधर भक्त वृत्रासुरको भी असुरदेहसे छुड़ाकर शीघ्र परमधाममें ले जाना है, अतएव उसके देहत्यागका साधन कर देनेमें ही दोनों पक्षको सुभीता है। यह सोचकर भक्तवांछाकल्पतरु भगवान्‌ने कहा—'अच्छा, तुम यही चाहते हो तो यही सही, इन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम महान् तपस्वी दधीचि ऋषिके पास जाओ और विद्या, व्रत तथा तपके द्वारा दृढ़ हुए उनके शरीरको उनसे माँग लो। हे इन्द्र! वह 'अश्वशिरस्' नामसे प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याको जानते हैं, जिसका उन्होंने अश्विनीकुमारोंको उपदेश

दिया था और जिससे अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हुए थे।* इसके सिवा वह दधीचि ऋषि मेरे स्वरूपभूत अभेद्य नारायणकवचको भी जानते हैं; उन्हींसे यह कवच विश्वरूपके पिता त्वष्टाको मिला था, त्वष्टाने विश्वरूपको दिया था और विश्वरूपसे उसको पाकर तुमने दानवोंपर विजय प्राप्त की थी। इस प्रकारकी विद्याओंसे दृढ़ उनके शरीरको तुम माँग लो, वह धर्मात्मा तुम्हारे माँगनेपर उसे देंगे और फिर उनकी अस्थियोंसे विश्वकर्माके द्वारा वज्र नामक शस्त्र बनवा लो। उस वज्रसे ही वृत्रासुरका वध होगा।

इन्द्रने दधीचिके पास आकर सब बातें कह सुनायीं। दधीचिने शरीर त्याग दिया। तब उनकी अस्थियोंसे वज्र बना और उसे लेकर इन्द्रने देवताओंकी विशाल सेनासहित अपने शत्रु वृत्रासुरपर चढ़ाई कर दी। जुझाऊ बाजे बजने लगे और भयंकर गर्जना होने लगी। विशाल देवसेनासहित इन्द्रको अपने सामने देखकर भी वृत्रासुरकी मानसिक स्थितिमें कोई अन्तर नहीं पड़ा। भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—

अथ वृत्रस्य कौरव्य दृष्ट्वा शक्रमवस्थितम्।
न सम्भ्रमो न भीः काचिदास्था वा समजायत॥

(महा०, शान्ति० २८१।१२)

---

* एक समय दधीचि ऋषिके पास अश्विनीकुमार ज्ञानका उपदेश लेने गये। उस समय ऋषि नित्यकर्म कर रहे थे, अतएव उन्होंने किसी दूसरे समय आनेको कहा। अश्विनीकुमारोंके चले जानेपर इन्द्रने ऋषिके पास जाकर कहा कि अश्विनीकुमार वैद्य हैं, उन्हें आप ब्रह्मविद्याका उपदेश न कीजियेगा। आप यदि करेंगे तो मैं आपका सिर उतार लूँगा। इन्द्र चला गया। फिर अश्विनीकुमार आये। तब ऋषिने इन्द्रकी बात उन्हें सुनायी। अश्विनीकुमारों ने कहा, 'आप चिन्ता न करें। हम पहले ही आपका यह मस्तक उतारकर इसकी जगह आपके धड़पर अश्व (घोड़े) का सिर लगा देते हैं। उसी सिरसे आप हमें उपदेश कीजिये। इसके बाद जब इन्द्र आकर आपका वह सिर काट लेंगे, तब हम आपके असली सिरको धड़से जोड़कर आपको जीवित कर देंगे। यह सुनकर सत्यसे डरनेवाले ऋषिने ऐसा ही किया। तभीसे अश्वके सिरसे ब्रह्मविद्याका उपदेश होनेके कारण उस ब्रह्मविद्याका नाम भी 'अश्वशिरस्' पड़ गया। यहाँ श्रीभगवान् इन्द्रको उस घटनाकी याद दिलाकर कहते हैं कि तुमने जिनका सिर उतार लिया था, वे राग-द्वेषहीन तुम्हारे माँगनेपर तुम्हें अपना शरीर दे देंगे।

'हे युधिष्ठिर! इन्द्रको अपने सामने देखकर वृत्रासुरको न सम्भ्रम हुआ, न भय लगा और न उसने युद्धके लिये कोई यत्न ही किया। वह निर्भय, निश्चल वीर हँसता हुआ इन्द्रसे लड़ने लगा। इन्द्र घबरा गये। तब वसिष्ठने आकर इन्द्रको उत्साह दिलाया। भगवान् विष्णुने इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया और भगवान् शंकरके तेजःस्वरूप ज्वरने वृत्रासुरके अन्दर प्रवेश करके उसे शिथिल कर दिया। इतनेपर भी भगवान्में अटल विश्वास रखनेवाले वृत्रासुरका बल इन्द्रसे बढ़कर ही रहा। उसने इन्द्रके वाहन ऐरावतपर एक ऐसी गदा मारी कि वह चक्कर खाकर खूनकी उलटी करता हुआ अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया। तब हँसकर वृत्रासुर कहने लगा—'इन्द्र! तुम घबराओ नहीं, अपने इस अमोघ वज्रका मुझपर प्रहार करो, तुम्हारा यह वज्र खाली नहीं जायगा। और मैं भगवान्को इस शरीरकी बलि देकर कर्म-बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्के परमपदको प्राप्त करूँगा।' हे इन्द्र! तुम्हारा यह वज्र श्रीहरिके तेज और महान् तपस्वी दधीचि ऋषिके तपसे तीक्ष्ण हो रहा है, अतएव इस वज्रसे अपनी विजय होनेमें सन्देह न करो। क्योंकि जिधर श्रीहरि होते हैं उधर ही विजय, श्री और समस्त गुण होते हैं—'**यतो हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः**।' पर यह याद रखो कि भगवान्का सच्चा कृपापात्र तो मैं ही हूँ। तुमको तो मुझे जीत लेनेपर सिर्फ भौतिक सुख और अनित्य राजसिंहासन ही मिलेगा, परंतु मैं तो अपने स्वामी भगवान्के आदेशानुसार उनके पवित्र चरणकमलोंमें मनको स्थित करके तुम्हारे इस वज्रसे विषय-भोगरूपी पाशके कट जानेपर शरीरको त्यागकर मुनिजनदुर्लभ परमधामको प्राप्त करूँगा। हे इन्द्र! जिन भक्तोंने अपनी बुद्धि केवल प्रियतम भगवान्में ही लगा दी है, उन अपने परायण भक्तोंको भगवान् स्वर्ग, पृथ्वीलोक और पातालकी सम्पत्तियाँ कभी नहीं देते; क्योंकि ये सम्पत्तियाँ राग-द्वेष,

उद्वेग-आवेग, आधि-व्याधि, मद-अभिमान, व्यसन-विवाद और परिश्रम-क्लेश आदि दोषोंसे भरी होती हैं। भला, माता कभी अपने ऊपर निर्भर करनेवाले शिशुको अपने हाथसे जहर दे सकती है? इसी प्रकार मेरे प्रभु श्रीनारायण भी अपने भक्तको विषय-सम्पत्तिरूप विष न देकर उसके धर्म, अर्थ और काम-सम्बन्धी प्रयत्नका ही नाश कर देते हैं। जब भगवान् ऐसा कर दें, तभी भगवान्‌की मुझपर कृपा हुई ऐसा अनुमान करना चाहिये। मुझपर भगवान्‌की यह कृपा हुई है, इसीसे तुम वज्र हाथमें लिये हुए मुझे मारनेके लिये मेरे सामने खड़े हो। परंतु तुम तो अभी धर्म, अर्थ और कामके ही प्रयत्नोंमें लगे हो, इससे तुम इस कृपाके पात्र नहीं हो। इसीसे तुमको स्वर्गादि सम्पत्तियाँ ही प्राप्त होंगी। भगवान्‌के इस कृपा-प्रसादका रहस्य उनके अकिंचन भक्त ही जानते हैं, दूसरे नहीं जानते। इतना कहकर आप्तकाम शरणागत अनन्य भक्त असुरराज वृत्रासुर अपने स्वामी भक्तवत्सल भगवान्‌से कहने लगा—

अहं हरे तव पादैकमूल-
दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते
गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
समंजस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं
संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्माऽऽत्मजदारगेहे-
ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥

(श्रीमद्भा० ६। ११। २४—२७)

'हे हरे! मैं मरकर भी फिर तुम्हारे चरण ही जिनका आश्रय हैं, उन तुम्हारे दासोंका भी दास बनूँ। हे प्राणनाथ! मेरा मन तुम्हारे गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी तुम्हारे गुण-कीर्तनमें लगी रहे, मेरा शरीर तुम्हारी सेवा करता रहे। हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं तुमको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्माका पद, सार्वभौम राज्य, पातालका आधिपत्य, योगसिद्धि—अधिक क्या, पुनर्जन्मका नाशक सायुज्य मोक्ष भी नहीं चाहता। जिनके पंख नहीं जमे हैं, वे पक्षियोंके बच्चे जैसे क्षुधासे अथवा दूसरे पक्षियोंसे पीड़ित होनेपर माताके आनेकी व्याकुलतासे बाट देखते हैं, जैसे रस्सीसे बँधे हुए भूखे छोटे-छोटे बछड़े गौका थन चूँगनेके लिये उतावले रहते हैं और जैसे पतिव्रता स्त्री दूर देशमें गये हुए पतिको देखनेके लिये व्यग्र रहती है, हे कमललोचन! वैसे ही मेरा मन तुम्हारे दर्शनके लिये व्याकुल है। मैं अपने कर्मोंके द्वारा संसार-चक्रमें भ्रमण कर रहा हूँ, तुम पुण्यकीर्ति हो, तुम्हारे भक्तोंके साथ मेरी मैत्री हो। तुम्हारी मायाके वश होकर मेरा यह चित्त पुत्र, स्त्री, शरीर और घर आदिमें आसक्त हो रहा है। हे नाथ! अब ऐसा करो कि जिससे यह चित्त तुम्हारे सिवा और किसीमें आसक्त न हो।'

अहा! कैसी निष्काम कामना है। न मोक्षकी इच्छा है; न

संसार-चक्रमें घूमते रहनेकी चिन्ता है। बस है तो यही कामना है कि आत्मा, मन, वाणी, शरीर सदा केवल तुम्हारी सेवामें लगे रहें! इससे बढ़कर भक्तकी और क्या चाह हो सकती है?

प्रार्थना करते-ही-करते वृत्रासुर पुलकित होकर कुछ कालके लिये ध्यानमग्न हो गया। त्रिभुवनसुन्दर भगवान्‌की छबि उसके सामने प्रकट हो गयी और वह मन-ही-मन उन्हें नमस्कार कर शीघ्र ही अपने समीप खींच लेनेकी प्रार्थना करने लगा। इन्द्र वृत्रासुरकी दशा देखकर चकित रह गया।

गोस्वामी तुलसीदासजीने भी शायद इसी भावनासे कहा है—

चहौं न सुगति सुमति संपति कछु रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहिं जहँ जहँ अपनी बरिआईं।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाड़िए कमठ अंडकी नाईं॥

अस्तु; वृत्रासुर भयानक त्रिशूल उठाकर इन्द्रकी तरफ दौड़ा। इन्द्रने त्रिशूलसहित उसकी भुजाको काट डाला। इसपर वृत्रासुरने बड़े जोरसे अपना परिघ इन्द्रकी ठोडीपर मारा, परिघ लगते ही इन्द्रके हाथसे वज्र नीचे गिर पड़ा। इन्द्र लज्जित हो गया। वृत्रासुरने हँसकर कहा—हे इन्द्र! यह समय खेद या लज्जा करनेका नहीं है। क्या हुआ जो वज्र गिर पड़ा? उसे उठाकर तुम मुझपर प्रहार करो! सृष्टि-स्थिति-संहार करनेवाले एक सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रभु ही हैं, उनके अधीन पुरुषोंकी स्वेच्छासे सभी जगह विजय नहीं होती। सब लोग जालमें फँसे हुए पक्षियोंके सदृश विवश होकर जिन परमात्माके अधीन हुए अपनी-अपनी चेष्टा कर रहे हैं, वह सबके संचालक काल भगवान् ही जय-पराजयके एकमात्र कारण हैं। ओज, साहस, शक्ति, प्राण, अमृत

और मृत्युके रूपमें स्थित भगवान् काल ही सबके कारण हैं। लोग मोहवश ही जड़ शरीरको कारण समझते हैं। हे इन्द्र! कठपुतली और कलके बने हुए हरिणकी भाँति सब जीव भगवान्‌के वशमें हैं। उस ईश्वरके अनुग्रहके बिना पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पंच सूक्ष्म महाभूत; इन्द्रियाँ और मन—ये सब भी विश्वकी सृष्टि करनेमें असमर्थ हैं। जो लोग इस रहस्यको नहीं जानते, वही पराधीन शरीरको स्वाधीन मानते हैं। हे इन्द्र! वस्तुतः भगवान् ही प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंको उपजाते हैं और प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंका विनाश करते हैं। हे इन्द्र! जैसे इच्छा न होनेपर भी कालकी प्रेरणासे अकीर्ति, ऐश्वर्यकी हानि और दरिद्रता प्राप्त होती है, ऐसे ही भाग्यवश आयु, श्री, कीर्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जब सब कुछ ईश्वरके अधीन है तब कीर्ति-अकीर्ति, जय-पराजय, सुख-दुःख और जीवन-मरणके लिये हर्ष-विषाद न रखकर द्वन्द्वमात्रमें समदृष्टि रहना चाहिये। सुख-दुःखादि सब गुणोंके कार्य हैं और सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं, अतएव जो इन तीनों गुणोंका अपनेको साक्षी समझता है, वह शोक-हर्षादिमें कभी लिप्त नहीं होता।

वृत्रासुरके निष्कपट दिव्य भाषणको सुनकर इन्द्र उसकी प्रशंसा करते हुए हँसकर कहने लगे—'हे दानवेन्द्र! अहो! तुम्हारी इस प्रकारकी बुद्धि देखकर यह जान पड़ता है कि तुम सिद्धावस्थाको प्राप्त हो गये हो। तुम सबके अन्दर एक ही आत्माको देखते हो, सबके सुहृद् हो और जगदीश्वरके परम भक्त हो। तुम आसुरी भावको त्यागकर महापुरुषत्वको प्राप्त हो गये, इससे जान पड़ता है कि भगवान् विष्णुकी सबको मोहित करनेवाली मायासे तुम पार हो चुके हो। अहो! यह बड़े ही

आश्चर्यकी बात है कि तुमने स्वभावसे ही रजोगुणी होकर भी बुद्धिको इस प्रकार दृढ़ताके साथ शुद्ध सत्त्वमय भगवान् वासुदेवमें लगा रखा है। इसलिये स्वर्गादि सुखोंमें तुम्हारा अनासक्त होना उचित ही है। क्योंकि जो पुरुष मुक्तिके अधीश्वर भगवान् श्रीहरिका भक्त है, वह सदा ही आनन्दपूर्ण अमृतके सागरमें विहार करता है, वह गढ़ैयामें भरे हुए थोड़े गँदले जलके समान स्वर्गादि भोगोंमें क्यों आसक्त होगा?'

इस प्रकार शीघ्र युद्ध समाप्त होनेकी इच्छासे दोनों भीषण युद्ध करने लगे। वृत्रासुर यों ही विशालकाय था, अब वह मुँह फैलाकर, जैसे बड़ा भारी अजगर महाकाय हाथीको निगल जाता है, उसी प्रकार ऐरावतसहित इन्द्रको निगल गया। परंतु निगले जानेपर भी अभेद्य नारायणकवचके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण वृत्रासुरके पेटमें इन्द्रकी मृत्यु नहीं हुई और वह अपने तीक्ष्णधार वज्रसे उसके पेटको चीरकर बाहर निकल आये तथा उसके पर्वत-जैसे विशाल मस्तकको काटकर धड़से अलग कर दिया। सब लोगोंके देखते-देखते ही वृत्रके शरीरसे एक दिव्य ज्योति निकली और वह भगवान्‌के स्वरूपमें जाकर लीन हो गयी। वज्रसे विदीर्ण किये जानेके समय उस महायोगी महासुर वृत्रका चित्त भगवान्‌में अनन्यभावसे लगा था, इससे वह अपार तेजवाले विष्णु भगवान्‌के परमधामको चला गया—

दारितश्च स वज्रेण महायोगी महासुरः।
जगाम परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः॥

(महाभारत, शान्तिपर्व २८३। ६०)

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

निर्लोभी भक्त तुलाधार शूद्र

प्राचीन कालकी बात है, किसी गाँवमें तुलाधार नामक एक शूद्र रहते थे। ये बड़े ही सत्यवादी, निर्लोभी, वैराग्यसम्पन्न और भगवान्‌के अनन्य भक्त थे, घरमें साध्वी स्त्री थी। संसारसे वैराग्य होनेके कारण ये कोई भी काम नहीं करते थे। शिलोञ्छवृत्तिसे अपना निर्वाह करते थे। खानेको इन्हें भरपेट अन्न तथा पहननेको पूरे वस्त्र नहीं मिलते थे, तथापि इनके मनमें कोई क्षोभ नहीं होता था। अवश्य ही इनकी स्त्रीको दरिद्रताके कारण कुछ दुःख रहा करता था; परंतु वह पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली होनेके कारण कभी इनसे न तो कुछ कहती और न इनकी रुचिके विरुद्ध किसी दूसरे उपायसे ही पैसे कमाती। पतिकी रुचिके अनुसार चलना ही वह अपना परम धर्म मानती थी। भगवान् बड़े भक्तवत्सल हैं, वे घट-घटको जाननेवाले होनेपर भी भक्तकी महिमा बढ़ाने तथा भक्तका एक ऊँचा आदर्श जगत्‌के सामने रखनेके लिये भक्तकी परीक्षा-लीला किया करते हैं। अतएव यहाँ भी उन्होंने परीक्षा करनेकी ठानी।

तुलाधारजीके कपड़ोंमें एक धोती थी और एक गमछा, दोनों ही बिलकुल फट गये थे। मैले तो थे ही। वे नाममात्रके वस्त्र रह गये थे, उनसे वस्त्रकी जरूरत पूरी नहीं होती थी। तुलाधार नित्य नदी नहाने जाते थे, इसलिये एक दिन भगवान्‌ने दो बढ़िया वस्त्र नदीके तीरपर ऐसी जगह रख दिये जहाँ तुलाधारकी नजर उनपर गये बिना न रहे। तुलाधार नित्यके नियमानुसार नहाने गये। उनकी नजर नये वस्त्रोंपर पड़ी। वहाँ उनका कोई भी मालिक नहीं था, परंतु इनके मनमें जरा भी लोभ नहीं पैदा हुआ।

उन्होंने दूसरेकी वस्तु समझकर उधरसे सहज ही नजर फिरा ली और स्नान-ध्यान करके चलते बने। दूर छिपकर खड़े हुए प्रभु भक्तका संयम देखकर मुसकरा दिये।

दूसरे दिन भगवान्ने गूलरके फल-जैसी सोनेकी डली उसी जगह रख दी। तुलाधार आये। उनकी नजर आज भी सोनेकी डलीपर गयी। क्षणभरके लिये अपनी दीनताका ध्यान आया; परंतु उन्होंने सोचा यदि मैं इसे ग्रहण कर लूँगा तो मेरा अलोभव्रत अभी नष्ट हो जायगा, फिर इससे अहंकार पैदा होगा। लाभसे लोभ, फिर लोभसे लाभ, फिर लाभ-लोभसे—इस प्रकार निन्यानबेके चक्करमें मैं पड़ जाऊँगा। लोभी मनुष्यको कभी शान्ति नहीं मिलती। नरकका दरवाजा तो उसके लिये सदा खुला ही रहता है। बड़े-बड़े पापोंकी पैदाइश इस लोभसे ही होती है। घरमें धनकी प्रचुरता होनेसे स्त्री और बालक धनके मदसे मतवाले हो जाते हैं, मतवालेपनसे कामविकार होता है और कामविकारसे बुद्धि मारी जाती है। बुद्धि नष्ट होते ही मोह छा जाता है और उस मोहसे नया-नया अहंकार, क्रोध और लोभ उत्पन्न होता है। इनसे तप नष्ट हो जाता है और मनुष्यकी बुरी गति हो जाती है। अतएव मैं इस सोनेकी डलीको किसी प्रकार भी नहीं लूँगा।

इस प्रकार विचार करके तुलाधार उसे वहीं पड़ी छोड़कर घरकी ओर चल दिये। स्वर्गस्थ देवताओंने साधुवाद दिया और फूल बरसाये!

इधर भगवान् भविष्य बतानेवाले ज्योतिषी बने और पोथी-पत्रा बगलमें दबाकर गाँवमें पहुँचे। आप घर-घर घूमने और लोगोंके हाथकी रेखाएँ देखकर भविष्य बताने लगे। तमाम गाँवमें

बात फैल गयी। सब ओर ज्योतिषीजीकी पूछ हो गयी। चारों ओर भीड़ जमा हो गयी, सभी अपना-अपना भविष्य पूछने लगे। खबर पाकर अपने भाग्यका लेख पढ़ानेके लिये तुलाधारकी स्त्री भी अड़ोसिन-पड़ोसिनोंके साथ ज्योतिषीजीके पास पहुँची। ज्योतिषीजीने हँसकर उसके विषादका कारण दरिद्रता बतला दिया और कहा कि 'तेरे भाग्यमें दरिद्रता ही बदी है, क्योंकि तेरा पति इतना मूर्ख है कि वह घर आयी लक्ष्मीका भी अपमान करता है। आज ही विधाताने उसे खूब धन दिया था, परन्तु वह मूर्खकी तरह उसे छोड़ चला आया। तब धन कहाँसे मिलेगा। जबतक दोनों जिओगे तबतक यह दरिद्रता बनी ही रहेगी। हे माता! तू अपने घर जाकर अपने स्वामीसे पूछ तो सही कि आज वह मिले हुए धनको क्यों छोड़ आया?' ज्योतिषीजीकी बात सुनकर तुलाधारकी स्त्री अपने घर लौट आयी और उसने स्वामीसे सारा हाल कह सुनाया। तुलाधारने कहा, 'ज्योतिषीजीकी बात बिलकुल सच है, परन्तु मैं धनका क्या करता।' साध्वी पत्नी कुछ नहीं बोली। तब कुछ विचारकर यह जाननेके लिये कि पण्डितको मेरी इस घटनाका पता कैसे लगा, तुलाधार अपनी स्त्रीको साथ लेकर ज्योतिषीजीके पास अकेलेमें गये और उनसे कहने लगे कि 'आप क्या कहना चाहते हैं, मुझसे कृपा करके कहिये।'

ज्योतिषीजी स्नेहभरे शब्दोंमें समझाते हुए-से बोले—'बेटा! तुम आँखोंके सामने पड़े हुए निर्दोष धनको सहज ही तृणके समान त्यागकर चले आये। अतएव अब तुम्हारा भाग्य कभी नहीं खुलेगा। तुम अपना अतुल ऐश्वर्य, शौर्य और मंगल—सभी कुछ नष्ट समझो। तुमने अपने घर आयी लक्ष्मीका अपमान किया है। फिर तुम्हें धनका सुख कैसे मिलेगा? अब भी तुम

मेरी बात मानो तो जाकर धन ले आओ और निष्कण्टक सुखभोग करो। संसारमें धन और ऐश्वर्य ही सार है, इसीसे मनुष्यकी शोभा और सम्मान है।'

निःस्पृह तुलाधारने कहा—'भगवन्! धनमें मेरी रत्तीभर भी स्पृहा नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि धन जीवको फँसानेवाला बड़ा भारी जाल है। जिस मनुष्यकी धनमें आसक्ति है, उसकी मुक्ति कभी नहीं हो सकती। धनमें मादकता है, मोह है, भय है और है मिथ्यामें प्रीति! धन आया कि चोर, जातिके लोग, राजा और राजपुरुषोंकी नजर उसकी ओर लग जाती है। पशु-पक्षियोंमें भी परस्पर डाह रहा करता है, फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। धनीसे दूसरे धनी और निर्धन डाह करने लगते हैं, जिससे प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है। पापजनक अहंकार और कामादिका तो प्रिय निवासस्थान ही धन है और है यह दुर्गतिका परम निदान। अतएव भगवन्! मुझको धन नहीं चाहिये। निर्धन रहकर ही मैं परम सुखी हूँ।'

ज्योतिषीजी कहने लगे—'तुम नहीं जानते, संसारमें जिसके पास धन है, उसीके सब कुछ है। धनी पुरुषोंके ही मित्र, बान्धव, कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, सौभाग्य, यश और सुख है। स्त्री-पुत्र उसीका सत्कार करते हैं, निर्धनको कोई पूछतातक नहीं; धनहीन मनुष्यके न मित्र हैं, न धर्म है और न उसका जन्म ही सार्थक है। धनसे ही परोपकार, यज्ञ, दान आदि होते हैं, धनसे ही कुएँ-तालाब बनाये जा सकते हैं, धनसे ही होम-जप होते हैं, जिनसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। निर्धन मनुष्य इनमेंसे कुछ नहीं कर सकता। व्रत, तीर्थसेवन, जप, सन्तुष्टि, सिद्धि, आजीविका, भोग, तप—सब धनसे ही होते हैं, धनसे ही रोगका प्रतिकार,

पथ्य, औषध और आत्मरक्षा होती है। शत्रुजय, स्त्रियोंका विलास, भूत-भविष्य और वर्तमानका ज्ञान, यहाँतक कि सभी सुकृत और दुष्कृत धनसे ही होते हैं। सारांश यह कि जिसके पास धन है, वही इच्छानुसार भोग भोग सकता है और वही दान-धर्म करके स्वर्गादिमें जा सकता है।'

तुलाधार बोले—'भगवन्! यहाँके भोग और स्वर्ग दोनों ही अनित्य हैं। भोगोंमें सुख मानना ही तो मोह है। आप मुझे क्यों मोहमें डाल रहे हैं—

अकामाच्च व्रतं सर्वमक्रोधात्तीर्थसेवनम्।
दया जप्यसमा शुद्धं संतोषो धनमेव च॥
अहिंसा परमा सिद्धिः शिलोञ्छवृत्तिरुत्तमा।
शाकाहारः सुधातुल्य उपवासः परं तपः॥
संतोषो मे महाभोग्यं महादानं वराटकम्।
मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्॥
परदारा भुजंगाख्या सर्वयज्ञ इदं मम।
तस्मादेनं न गृह्णामि सत्यं सत्यं गुणाकर॥
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० ५३।६०—६३)

'अकाम ही सर्वव्रत है, अक्रोध ही तीर्थसेवन है, दया ही जपके तुल्य है, सन्तोष ही शुद्ध धन है। अहिंसा ही परमसिद्धि है, शिलोञ्छ ही उत्तम वृत्ति है, शाकाहार ही मेरे लिये अमृत और उपवास ही परम तप है। यथालाभमें सन्तुष्टि ही महान् भोग्य है और कौड़ी ही महादान है। परस्त्री माताके समान है और पराया धन मिट्टीके ढेलेके तुल्य है। परस्त्रियाँ विषधर साँपके समान हैं। ऐसा भाव रखना ही मेरा सर्वयज्ञ है। अतएव हे ज्योतिषीजी! मैं

धन नहीं लूँगा, यह मैं आपसे सत्य-सत्य कहता हूँ। कीचड़ हाथोंपर लपेटकर उसे धोनेकी अपेक्षा तो कीचड़से दूर रहना ही उत्तम है।'

नरश्रेष्ठ शूद्र तुलाधारकी इस निर्लोभ वृत्तिपर देवताओंने उसका जयघोष किया, आकाशसे उसके मस्तक और शरीरपर देवताओंने फूल बरसाये। देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं। दिव्य लोकसे उसके लिये विमान उतर आया।

तुलाधारने मन-ही-मन सोचा, ये ज्योतिषी कौन हैं? इनकी चेष्टा, इनकी वाणी और इनका ज्ञान बड़ा ही आकर्षक है। क्या मेरे प्रभु साक्षात् हरि ही मुझे छलने आये हैं अथवा ये कोई दूसरे देवता हैं? यों सोचकर तुलाधारने ज्योतिषीरूपी भगवान्‌के चरण पकड़कर उनसे कहा, 'प्रभो! मालूम होता है आप ही मेरे प्रियतम स्वामी हैं, फिर छद्मवेषी ज्योतिषी क्यों बने हुए हैं? कृपाकर प्रकट होइये और अपने विश्वमोहन स्वरूपकी झाँकी दिखाकर दासको कृतार्थ कीजिये।'

भक्तकी प्रार्थना सुनते ही भगवान् अपने विष्णुरूपमें बदल गये। चारों ओर सहस्रों सूर्योंका-सा, परन्तु निर्मल सुशीतल प्रकाश छा गया। उसी प्रकाशमें भक्त तुलाधार और उनकी भाग्यवती पत्नीने नीलमणिसदृश सुन्दर सुनीलवर्ण, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वैजयन्तीमाला, कौस्तुभमणि और श्रीवत्स तथा भृगुलताके चिह्न हृदयपर धारण किये हुए, मकराकृत कुण्डल और किरीट-मुकुटधारी, पीताम्बरधर प्रभुको मन्द-मन्द मुसकराते हुए देखा। दोनों कृतार्थ हो गये। भगवान्‌की आज्ञासे दोनों दिव्य विमानपर सवार होकर दिव्य धामको पधारे।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)
050	पदरत्नाकर
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन
058	अमृत-कण
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता
333	सुख-शान्तिका मार्ग
343	मधुर
056	मानव-जीवनका लक्ष्य
331	सुखी बननेके उपाय
334	व्यवहार और परमार्थ
514	दुःखमें भगवत्कृपा
386	सत्संग-सुधा
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल
347	तुलसीदल
339	सत्संगके बिखरे मोती
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति
350	साधकोंका सहारा
351	भगवच्चर्चा
352	पूर्ण समर्पण
353	लोक-परलोक-सुधार
354	आनन्दका स्वरूप
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
356	शान्ति कैसे मिले?
357	दुःख क्यों होते हैं ?
348	नैवेद्य
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
336	नारीशिक्षा
340	श्रीरामचिन्तन
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
345	भवरोगकी रामबाण दवा
346	सुखी बनो
341	प्रेमदर्शन
358	कल्याण-कुंज
359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
361	मानव-कल्याणके साधन
362	दिव्य सुखकी सरिता
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
364	परमार्थकी मन्दाकिनी
366	मानव-धर्म
526	महाभाव-कल्लोलिनी
367	दैनिक कल्याण-सूत्र
369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
370	श्रीभगवन्नाम	379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373	कल्याणकारी आचरण	382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374	साधन-पथ—सचित्र	344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
375	वर्तमान शिक्षा	371	राधा-माधव-रससुधा- (षोडशगीत) सटीक
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384	विवाहमें दहेज—
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	809	दिव्य संदेश...........
378	आनन्दकी लहरें		
380	ब्रह्मचर्य		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
819	श्रीविष्णुसहस्त्रनाम—शांकरभाष्य	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231	रामरक्षास्तोत्रम्	225	गजेन्द्रमोक्ष
1594	सहस्त्रनामस्तोत्रसंग्रह	1505	भीष्मस्तवराज
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	699	गंगालहरी
054	भजन-संग्रह	1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	228	शिवचालीसा
142	चेतावनी-पद-संग्रह	232	श्रीरामगीता
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	851	दुर्गाचालीसा
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	236	साधकदैनन्दिनी